झुरमुट

'नलिन'

नालन्दा-प्रकाशन, बम्बई

नालन्दा पब्लीकेशन कम्पनी

रेस कोर्स रोड, बड़ोदा.

संकेत

प्रकाश

'झुरमुट' को नलिन उसी सबल विश्वास और सफल प्रसन्नता से भेंट करता है, जिस विश्वास और प्रसन्नता से उस ने 'शतरंज के मोहरे' भेंट की थी। झुरमुट कला-प्रकृति की सहज देन है। न तो माली इस की देख-भाल करता है, न इस में काँट-छाँट। प्रकृतिके कम्पनका संकेत पा, स्वयं ही पेड़ उग आते हैं। इस में जीवन की धूप-छाँह खेलती है— किरणें उजियाली और छाया का जाल बुनती हैं। तीखी लूएँ भी इस की छाया में घड़ी-भर तड़प जाती हैं। नशीली गंधपवन भी नाच उठती है।

'झुरमुट' का केन्द्र-देवता है— मानव। पत्थर का देवता नहीं, हाड़-मास का पुतला मानव-देवता! 'झुरमुट' का कोई भी पेड़ यदि फूलोंमें मुसकराता है, तो ये फूल मानवके पैरों-तले बिछानेकी अभिलाषा में। कोई भी वृक्ष यदि गोद में छाया लिये खड़ा है, तो आतप-तापसे झुलसे पंथी को थपकियाँ दे सुलाने के लिये ही। और यदि किरणों की प्यासी नजर बचाकर, किसी भी पौधे की पलकों में ओस के आँसू बचे हैं, तो शूलसंकुल टेढ़े-तिरछे रास्ते में चलते-गिरते यात्री के धूलसने पैरों को धोने के लिये ही। 'नलिन' की कला का उद्देश्य है—मानव। उस की

कला का सहचर है—मानव और उस की यात्रा का छोर भी है—मानव।

हाड़-मास के मानवसे परे भी कुछ है, ऐसी आस्था नलिन की नहीं।

झुरमुट का कला-केन्द्र वह मानव है, जिस में युग-युग से एक प्यासी आग हाहाकार कर रही है। उस आग की बेबसी और तड़प को कितनों ने सही पढ़ पाया? वह आग मणि-लुटी सर्पिणी-सी फन पटक रह जाती है; जैसे भूखा चीत्कार दैत्याकार नंगे पर्वतों से सिर टकरा कर रह जाय। यही आग जीवन में जीवन है—प्राणशक्ति है। इसी प्राणशक्ति की उपेक्षा ही नहीं; उस का तिरस्कार भी, हम अपने ही द्वारा नियुक्त प्रतिहारों-पहरेदारों—धर्म-नियम-बंधनों—के भय से करने लगे हैं। यही आग मानव-विकास के इतिहास को कलेजे से लगाये है। झुरमुट की 'आग' मानव-जीवन-विकास के तीन-चार हजार वर्ष का इतिहास अपनी सीमा में बाँधे है। इस से जीवन के स्वाभाविक प्रवाह का पथ प्रकाशित है। 'झुरमुट'की 'आग' की प्रकाश-पराधि से बाहर भी क्या कोई और आग है?

प्राण की स्वाभाविक पुकार जब जीवन की गति नहीं रहती, प्राकृतिक भूख ज़ब जीवन-पथ को प्रशस्थ नहीं करती और शरीर की स्वस्थ आग मशाल बन आगे नहीं चलती, तब जीवन-विकास के गतिशील प्रवाह को रोकने के लिए कितने ही अवांछित पहरेदार निषेध-आज्ञा लेकर खड़े हो जाते हैं। कितने ही नियम--बंधनों की कँटीली झाड़ियाँ हवा से खेलता अंचल पकड़, पथ रोक लेती हैं। स्वाभाविक धर्म--भूख, प्यास, शारीरिक माँग आदि—जब जीवन से परे का धर्म—काल्पनिक परलोक-प्राप्ति का साधन—बनता है, तब जीवन की उपेक्षा होने लगती है। स्वाभाविक माँग का तिरस्कार होने लगता है। और जब धर्म, राजकी दासता का भार उठा, राज के पीछे चल कर राजधर्म बन जाता है, तभी मानव का स्वाभाविक

जीवन कपटका शिकार होता है। धर्म जहाँ, स्वाभाविक व्यक्तिगत जीवनका विनाश है, राजधर्म सामाजिक जीवन का मरघट। मानव-समाज में जब एक व्यक्ति ऊँची मीनार बनेगा और शेष प्राणी छोटे-छोटे टीले रह जायँगे, तो अन्तर अनिवार्य है। अन्तर है तो एक के द्वारा अन्यों का मनभाना उपभोग भी। राजधर्म के नाम पर इतिहास में क्या नहीं हुआ? फिर सामन्त अनंग भोली मृगी-सी चाँदनी का रस चूस कर चला जाये, तो आश्चर्य ही क्या?

'झुरमुट' में मानव ही जीवन-सीमाओं का प्रहरी है। वह साधन भी है और साध्य भी। इसलिये वह निखरे रूपमें आनेके लिये सचेष्ट और बेचैन है। और इसी बेचैनी ने उसे बहुत धुले रूप में उपस्थित कर दिया है। मानव ने धर्म-नियम, शासन-अनुशासन अपने स्वस्थ प्राणों पर पहरा देनेके लिये नियुक्त किये थे, न कि उसका रक्त पी जानेके लिये समाज-संकोच धर्म-निषेध जीवन-पथ में बाधा क्यों बनने दिये जायँ। 'निष्काम' की तारा की स्वाधीन चेतना और प्राणवान सुकुमार हृदयता को उन बाधाओं की चिन्ता नहीं।

'निष्काम' की 'तारा' नारी का एक शक्ति-जाग्रत रूप है! वह कल्पना नहीं, बह तो आज भी जैसे उत्सर्ग-सी भोली, गंगा-लहरों सी गदगद और मुसकान-सी निर्मल मेरी पलकों के झुरमुट में रम रही है। 'निष्काम' की तारा और 'त्रिपथगा' की रूपा को बहुतसे साथी निर्दय दमन का शिकार भी कहें तो आश्चर्य नहीं। पर न तो वे दमन की शिकार हैं; न बलपूर्वक उपबास रखने को ही विवश की जा रही हैं और न अकाल पीड़िता ही वे हैं। तारा और रूपा में सतर्क और सचेष्ट मानव-कल्याण ही आलोकित है। दोनों में उत्सर्ग है। और उत्सर्ग साधारण

मानव-गुण तो नहीं। आत्महत्या अश्रेयस्कर है, आत्मवलिदान नहीं।

'दादा कामरेड' की शैल भी नारी का एक सबल रूप है। उस का समर्पण भी समय की माँग का स्वाभाविक उत्तर है। पर शैल की वह अवि-रोध स्वीकृति केवल हरीश के प्यासे प्राणों के लिये शीतल समर्पण ही नहीं, उस की अपनी भूख भी है। और समाजमें ऐसी नारी भी हैं, जो अनेक में अपनी भूख का उत्तर तलाश करती हैं। पर रूपा में किसी भिन्न नारी का ही निवास है।

'झुरमुट' की कहानियों में प्लाट का अभाव शायद पाठकों को खटके भी, पर यह मेरी अपनी रूचि ही है। प्रकार और शैलीमें एक प्रयत्न। चाहे इसे मेरी निर्बलता ही समझा जाय।

रस-गति में समप्रवाह रहे, यह ध्यान रहा है। भूख—काम और भोजन—जीवन के शून्य की इकाई हैं, पर शून्य में और भी बहुत कुछ समाया है। इसी लिये इकाई और शून्य का साहचर्य मूल्य बढ़ा देता है; पर प्रार्थक्य से मूल्य घटता ही है। इसलिये भूख समावस्था में ही है—सामजस्य अवस्थामें। समगति में रहते भी न जाने, आनजाने में, कहा-नियों का अंत प्रायः करुणा में कैसे हो गया। सब कहानियाँ छपने पर एक मित्र ने संकेत किया तो मैं स्वयं ही आश्चर्य में पड़ गया। अस्तु।

जीवन के झुरमुट में कितनी विलक्षणता है—विस्मयजनक विभिन्नता। छोटे-से 'झुरमुट' में सब तो कैसे समाएगा। असीम को ससीम करने की कल्पना-चेष्टा ही अपनी सीमाओं को कमजोर करना है। पर इतना अवश्य है—मेरी कलम अपनी परिधियोंकी रेखाओंसे जीवनकी विभिन्नता और अखिल भारतीयता को छूने के लिये सचेष्ट अवश्य है। 'आस्तिकवाद' और 'महालक्ष्मी' इस दिशा में प्रयत्न-मात्र हैं। और इस प्रयत्न की

सफलता ?—इस से अधिक और क्या सफलता कि 'आस्तिकवाद' कितने ही पत्रों के सिद्धान्त और समझदारी के दुर्ग–द्वारों से मस्तक टकरा कर लौट आई। लेकिन वह आहत तनिक भी नहीं, उसे अपनी शक्ति का विश्वास और भी बढ़ गया।

एक बात और—'झुरमुट' की असफलताओं के लिये भी मेरी लेखनी उतनी ही उत्तरदायी है, जितनी सफलताओं के लिये। किसी भी कमी और अभाव की जबाबदारी से यह भागेगी नहीं। मीठी और तीखी समालोचनाओं का मैं समान रूप से सम्मान और स्वागत करूँगा। किसी भी उचित सम्मति के लिये अनुगृहीत ही रहूँगा।

—नलिन

आग

[जनवरी, १९४५]

लाहोर

विजन प्रान्त, सुनसान डगर, पहाड़ी अंधकार, डरी-डरी-सी शाम, दम साधे सन्नाटा और हड्डियों को छेद डालने वाली तीर-सी ठण्डी हवा। इन आतंकित क्षणों में भी भूत की छाया-सी कोई नारी घन वनाच्छादित ढाल की ओर बढ़ रही है। थके पगों को चट्टानों पर जमा-जमा कर रखती, तेज़ धार-सी पुतलियों से अंधकार चीरती और धनुष से झाड़ियों को एक ओर हटाती, पगडण्डी बनाती आगे बढ़ रही है।

ढाल से कई मोड़ उतर कर वह नीचे आई। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, देखा—झाड़ियों की भीड़ में पगडण्डी शीतमारी सर्पिणी-सी सकुचाई पड़ी है, दूर पर, मैदान में, आग जल रही है और कोई पुतला-सा उस के आस-पास घूम-फिर रहा है। आग का गुलाबी प्रकाश पगडण्डी पर खेल रहा है। वह कुछ देर ठिठकी, चारों तरफ देखा, मुँह से उच्छ्वास-लिपटे शब्द निकल पड़े-उफ़, आज कहाँ भटक आई।

धनुष का लचकदार सहारा लेते हुए, वह एक मोड़ के पास आ गई। यहाँ से एक पहाड़ी बटिया मैदान में आती थी। सघन झाड़ियों में खोया-खोया ८०-८५ हाथ लम्बा ढाल और उसके आगे हरी-हरी चिकनी घास वाला विस्तृत मैदान।

झुरमुट

शिकारिन ने एक चट्टान पर पैर जमाया, पगडण्डी पर फैली हुई झाड़ियों को धनुष से हटाना चाहा, सरसराहट हुई, वह चौंकी, और धनुष से झाड़ियों का हृदय मथ डाला। फिर तेज सरसराहट—गुर्राहट। एक भयंकर रीछ बब्कार कर झपटा। उसने धनुष का वार किया—वार खाली। फिर सँभली, दोनों हाथों से रीछ के सिर पर धनुष मारा। रीछ कर्कशता से बबकारी —पंजा चलाया। पंजा उस के सीने पर पड़ा, वक्ष पर बँधा चर्म फट गया। वह घबराई, पिण्डलियाँ डगमगाईं, फिर साहस किया और पूरा बल लगा, रीछ की कमर पर धनुष दे मारा। क्रोध में पागल हो, रीछ ने उस पर टूट पड़ना चाहा—तेज़ी से मौत-जैसी थूथड़ी और प्रलय-जैसे पंजे का प्रहार किया। शिकारिन के पैर डगमगाये, पृथ्वी घूम गई, ई-ई-ई- एक तीखी चीख और लुढ़क कर ढाल के नीचे।

५०-६० गज़ पर कोई बनचारी आग में माँस भून रहा था। तीखी चीख सुन, मुड़ कर देखा—काल-सा विकराल रीछ आक्रमण को तैयार। माँस एक तरफ़ फेंक, जलती लकड़ी उठा, वह रीछ की तरफ भागा। शिकारिन की फटी-फटी आँखों के सामने काल का भयंकर रूप उपस्थित। झाड़ियों से निकलने के लिए रीछ पागल। उसने अंतिम ज़ोर मारा, झाड़ियों से निकला। वह झपटा, वह आया, प्राण गये-फिर एक भयकम्पित चीख पहाड़ों में गूँज गई। और तुरन्त बिजली के धक्के की तरह एक जलती लकड़ी रीछ की कमर पर आ गिरी। रीछ भयंकर चीत्कार करते हुए चढ़ाई की ओर भाग गया।

झाड़ियाँ उत्साह से जल उठीं। बनचारी भी वहाँ आ पहुँचा। सब ओर पुतलियाँ दौड़ाईं। उस की समझदार शिकारी आँखोंने देख लिया—एक लड़की झाड़ियों में बेसुध पड़ी है। पास आया, उसे हिलाया-डुलाया—बिल्कुल बेहोश, बर्फ जैसी ठण्डी—सुन्न।

उस निस्पंद शिकारिन को अपने कंधों पर डाल, उस की ठण्डी कलाई गर्दन के सामने ला, उसे दाँये हाथसे थाम, बाँय से उसकी गोल-गोल चिकनी स्वस्थ जंघाओं को कस, वह बनचारी शकर की तरह सती को आग की तरफ़ ले चला।

* * * *

वनचारी बहुत देर तक उस बेहोश जवानी को अपने वक्ष के सहारे बैठाये रहा! शरीर और आग की गर्मी से उस में चेतना आगई, पर जैसे सपने में हो। फटी-फटी आंखों से उसने अपने आप को देखा, बनचारी को देखा, और सामने साँप-सी लहराती आग को देखा।

"तुम कौन?—और वह..... वह भयंकर रीछ?" शिकारिन की पुतलियों में भयमिश्रित आशंका छटपटाई।

"रीछ तो तभी चोट खा कर भाग गया।" बनचारी ने उस का भय दूर करना चाहा।

"तुम अँधेरे में भी निशाना...?" उस की पुतलियों में विस्मय की चमक और आनन्द की मुसकान खिल उठी।

"तुम्हारी चीख सुन कर मैंने एक जलती लकड़ी रीछ को मारी। चीत्कार करते हुए वह ऐसा भागा कि अब...।"

"आग से रीछ भाग गया?"

"आग से सब पशु डरते हैं!"

"सब पशु डरते हैं!"

"हाँ।"

"भेड़िये भी?"

"हाँ।"

" चीते भी ? "

" हाँ । "

" शेर भी ? "

" हाँ-हाँ । शेर भी, हाथी भी, गेंडे भी, अरने-भैंसे भी। कोई भी जानवर आग के सामने नहीं ठहरता । "

" सच ? " शिकारिन की पुतलियों में बाल-कौतुहल चमक उठा।

" पगली कहीं की । " बनचारी हँस दिया। वह लजाकर मुसकादी !

" इस से बलवान कोई भी चीज़ नहीं ! हमारा अहेरी सरदार कहता है, आग ही जंगल का देवता है। "

" इतनी बातें तो हमारे साथियों में कोई भी नहीं जानता। तुम कौन हो अनजान साथी ? " कहते हुए शिकारिन ने अपनी पुतलियाँ बनचारी की आँखों में डाल दीं। वह कुछ और अधिक सट कर बैठ गई।

" मेरा नाम चन्दन है—पास ही मेरी गुफ़ा है। "

" और मेरा नाम माला ! ओह, कितनी थकगई। कुछ भी हाथ नहीं लगा। ओह ओ—ऽ—ऽ—ऽ—अइ ! इतनी ठण्ड ! "कह, माला ने अँगड़ाई ली। हवा का एक झोका आया, वक्ष पर बँधा फटा चमड़ा उघड़ा, उस का स्वस्थ उरोज गदरे अनार की तरह काँप उठा। उभार पर आग की सुनहरी लपट-सी दौड़ गई ! चंदन की आँखों में अनजान कौतुहल तड़प उठा।

" आज बहुत बढ़िया मृग मारा है। पास ही पड़ा है, भूने लेताहूँ। " कह कर चंदन उत्साह से खड़ा हो गया।

" मैं भी साथ रहूँगी। " कह, चंदन के कंधे का सहारा लेते हुए माला भी साथ चल दी।

दोनों लम्बे-लम्बे तीरों और बरछों में मृग की बोटियाँ लगा कर भूनने

लगे। हवा के झोकों से परेशान आग की लपटें उनके शरीरों को छू जातीं—उन में नई आग जगा जातीं।

"यहाँ खड़े-खड़े तो...।"

"पर तुम्हारा सहारा लेकर ही मैं....।" कह दानों आग के चारों ओर घूम-घूम कर माँस भूनने लगे। चंदन आगे और उस का सहारा लिये माला पीछे-पीछे। जैसे जंगली जीवन में नारी पुरुष का अवलम्भ स्वीकार कर रही हो और पुरुष नारी को पाकर पूर्ण बनने का आरम्भ कर रहा हो।

"जंगली जीवन में आग कितनी उपयोगी है, चंदन।"

"और क्या।"

"गोश्त भूना जाता है, पगडण्डी दीख जाती है, रीछ भाग जाता है!"

"और दो अनजान बनचारी साथी बन जाते हैं।" चंदन माला की तरफ़ कनखियों से मुसकाया और माला सर्दी से काँपते हुए, ज़रा चंदन की बगल में सिमट गई।

"क्या नहीं माला?" कह कर चंदनने उसे अपनी बाँई भुजा में कस लिया।

"हुश।" वह मछली की तरह फुदक कर भुजपाश से निकल गई।

"स्वच्छन्द प्रवाह को बाँधा क्यों जाय?" बराबर में बाँई ओर चलते हुए माला बोली।

"आपसी सहायता बंधन नहीं माला। इससे जीवन सरल ही बनेगा। पशुओं में भी एक संवेदना का तार है, जो सब को एक किये हैं।" चंदन ने बरछे को आग में घुमाते हुए कहा।

"अगर बहाव में बाधा और गति में शिथिलता आजाय।"

"दो धाराओं के मिलने से बहाव में तेज़ी ही आयगी।"

झुरमुट

'स्वाधीनता ही तो...... ।" माला बात पूरी भी न कह पाई, बर्फीली हवा का तेज़ झोंका आया, वह काँप कर चंदन से लिपट गई।

"इतनी ठण्ड!"—माला की कँपकँपी बँध गई।

"अग्निदेवता गवाह है, माला — हम दोनों... ।" चंदन ने उसे अपनी बाँई भुजा से कस कर, वक्ष से लगा लिया। चंदन को अपने दाँये हाथ से कसते हुए माला ने केवल 'हाँ' सूचक सिर हिला दिया।

परस्पर सटे हुए, धीरे-धीरे घूम कर, छः-सात चक्कर में माँस भून लिया गया। भुने माँस वाले तीरों और बरछों को लेकर वे शिला के पास आगये।

"यहाँ तो बहुत ठण्ड है।" माला धनुष, तीर, बरछे आदि समेटते हुए कम्पित वाणी में बोली।

"गुफ़ा में चलकर ही खायँगे।" चंदन ने भी माला की कम्पित कामना को दोहराया।

शीघ्र ही धनुष की डोरियों से तरकश, तीर, भाले, बरछे, धनुष आदि एक साथ बाँध लिये गये। सामान का बोझ चंदन ने अपनी कमर पर लाद लिया। दोनों आग में से दो जलती लकड़ियाँ ले, गुफ़ा की ओर चल दिये—जैसे दो उत्सुक साथी नवीन जीवन की धुंधली दुर्गम अनजानी पगडण्डी पर जवानी की जलती मशालें लिये जोश में बढ़े चले जा रहे हों।

* * *

गुफ़ा अभी दूर थी। पथ झाड़ियों और सूखे पत्तों से ढका था।

माला सहसा चौंकी—निकट ही, झाड़ियों में, सरसराहट हुई। उसने धीरे-से चंदन का कंधा हिला कर कहा, "क्या है?"

"कुछ भी हो, डरना क्या!" चंदन लापरवाही से बोला।

सरसराहट और भी तेज़ होगई। लगा, जैसे कोई प्राणी सूखे पत्तों और

झाड़ियों को मसलते हुए उनकी तरफ़ आ रहा है।

"कोई है!" माला ने सहमी हुई वाणी में फिर कहा।

"देवता की लौ तुम्हारे हाथमें है, फिर भी डर।" चंदनने बिना ठहरे, आगे बढ़ते हुए उत्तर दिया।

पर माला के दिल की धड़कन बढ़ती ही गई।

माला की आशंकित पुतलियों ने देखा—एक अस्पष्ट काली छाया उनकी तरफ़ तेज़ी से आ रही है।

"वह आ गया। चंदन, वह कौन?" माला ने घबराकर चंदन का कंधा झखझोर डाला। वह चलते-चलते ठहर गया।

दोनों ने जलती लकड़ियों का प्रकाश सामने की भूमि पर फेंका। लम्बे-लम्बे डग भरते हुए कोई सुडौल शिकारी उनकी तरफ आते हुए दीख पड़ा। माला सहम कर चंदन के पीछे खड़ी होगई और वह शिकारी सामने भी आ पहुँचा। मालाने उसका चमकता आनन देखा, उलझे हुए बाल देखे, और काली-काली पुतलियाँ देखीं। वह आश्चर्य-विह्वल हो पुकार उठी, "मंगल! अरे मंगल, तुम यहाँ? इस समय?"

"रास्ता भूल गया। तुम्हारी आग के सहारे इधर आ पहुँचा। आज कितना भटका। आधी रात–खूब मिली। चल, दोनों साथ-साथ—। दोनों...।" मंगल, आनन्द में पागल हो, माला की कलाई पकड़, उसे साथ ले जाने लगा।

माला ने कलाई छुड़ा, क्षणभर स्थिर पुतलियों से मंगल को देखा, फिर ढलती पलकों से चंदन की आँखों में झाँका। चंदन मुसकरा-भर दिया।

"क्यों? नहीं चलेगी?—अरे!" मंगल ने फिर प्रसन्न विस्मय में तैरती पुतलियों से माला की कलाई पकड़ली।

"नहीं, मंगल, अब नहीं।" माला ने उस के हाथ में कलाई ढीली छोड़ते

हुए धीरे से उत्तर दिया।

"क्यों नहीं?—हमारे साथ शिकार....।"

"हम दोनों–जानते नहीं, यह वीर चंदन। हम दोनों अब। हाँ चंदन, यह प्रसिद्ध शिकारी मंगल है। हम दोनों ने अनेक बार साथ-माथ शिकार किया है!" माला ने दोनों का परिचय कराया।

"मैं कुछ भी नहीं समझा—क्यों नहीं जायगी।"

"हम दोनों साथी बन गये हैं।"

"तो क्या हुआ?"

"अग्निदेवता के सामने हम साथी बन गये हैं।" चंदन ने अपने अधिकार की घोषणा की।

"अग्निदेवता गवाह है—हम दोनों सदा साथ रहेंगे।" माला ने बात पूरी की।

"स्वच्छन्द जीवन, निर्बाध बहाव, मनचाहा विचरण—यही तो जंगली जीवन है माला। इस में बंधन कैसा?" मंगल ने आश्चर्यमय उपहास-सा किया।

"फिर भी आपसी संवेदना से जीवन सरल और सुखी बनेगा मंगल।" माला ने समझाया।

"जीवन को क़ैद करनेवाली विद्रोहिनी...यह परनिर्भरता और गुलामी...छीः माला, अबला, कायर।" मंगल के शब्दों में व्यंग्य की धुंधली छाया छटपटा उठी।

"परनिर्भरता नहीं, आदान-प्रदान।" माला दृढ़ता से बोली।

"तब तो तुम स्वाधीन नदियों को भी किनारोंमें बाँध दोगी, जंगलों की सीमाएँ तय करोगी, पशुओं को कैदी बनाओगी, पक्षियों के पर काट कर पिंजरों में बंद कर दोगी और स्वयं स्वाधीनता खोकर गुफा में कैदी बनोगी।" मंगल

ने जैसे सभ्य जीवन की भविष्य-वाणी करदी।

"हमारी गुफा में अग्निदेवता का निवास है–वहाँ कौन किस का कैदी।" माला ने प्रसन्न पुतलियों से उत्तर दिया।

"और फिर इन देवताओं की काल्पित मनमानी आज्ञाओं का पालन, अनुकम्पाओं पर विश्वास, इन की गुलामी, मानव-कर्म का अवसान — हमें नहीं चाहिये। तुम पराजित हो चुकी, माला। मंगल तो पवन की तरह स्वच्छन्द किरण की तरह सर्वगामी, शैल झरने की तरह स्वाधीन पथ प्रवाहित – ।" मंगल उपहास, तिरस्कार और मस्ती की हँसी हँस कर आगे बढ़ गया।

"अग्निदेव प्रसन्न हों।" माला ने नारी-सुलभ शुभ आशीश दी।

मंगल बिना सुने ही दूर निकल गया।

माला और चंदन और भी सबल चरण, गहरे विश्वास और धुले प्रकाश के साथ अपने मार्ग पर बढ़ चले।

* * *

दोनों गुफ़ा में आगये।

"अग्निदेव प्रसन्न हों।" चंदन ने अपने हाथ की जलती लकड़ी को कुण्ड में रख दिया।

"यह जोत सदा जलती रहे।" माला ने भी लकड़ी कुण्ड में डालदी।

चंदन ने कमर का बोझ उतार, एक ओर रखा। कोने में रखी हुई गंध-काष्ठों में से एक-दो कुण्ड में डालीं। माला ने भी वैसा ही किया। सुगंध उड़ चली। आग ने प्रसन्न हो गुफा का कोना–कोना प्रकाशित कर दिया। एक–दो क्षण आग के पास खड़े रहने पर भुने माँस की तरफ़ संकेत करके चंदन बोला "भूख नहीं रही क्या?"

"चलो, अभी, पर हाँ, पहले अग्निदेवता को।" कहते हुए तीर में से

मासँ लेकर माला ने आग में डाला।

"इसी अग्निदेवता के वरदान से हमें सब-कुछ मिलता है—शिकार फलफूल चमड़ा, ऊन, हड्डियाँ, लोहा और ।" चंदन मुसकरा कर बोला।

"और क्या?" अनजान जैसी माला ने पूछा।

"और माला।" चंदन ने कहा और दोनों खिलखिला कर हँस दिये।

दोनों ने फिर आग में थोड़ा-थोड़ा माँस डाला और एक मृगचर्म बिछा, खाने के लिए बैठ गये। मुसकराते जाते, गोश्त की बोटियाँ खाते जाते, जीवन का नया रस पाते जाते और पेट की आग बुझाते जाते।

प्रकाश जगमगा रहा था।

खाना पीना समाप्त कर, वे पुआल के गद्दे पर बिछे, कोमल मृगचर्म पर आ बैठे। गुफ़ा के करीब आधे भाग में सूखी घास-सी पुआल बिछी थी और उस पर कोमल रोमवाली मृगछाल। एक कोने में कुछ पशुचर्म, सींग, नोकदार तेज़ औज़ार, हड्डियाँ और ऊन पड़ी थी। पास ही तीर-कमान, भाले, बरछे हंसिया, पत्थर के टुकड़े और सुन्दर चमकीले पंख रखे थे। दीवारों पर चारों ओर बिलक्षण चित्रकारी-सी हो रही थी। दलदल में फँसा बहुसिंगा, पेड़ पर चढ़ शहद तोड़ते हुए भद्दा-सा मनुष्य, अरने-भैंस को मारते हुए शिकारी, पेड़ पर उल्टे चढ़ते हुए रीछ—ऐसे अनेक भद्दे अस्पष्ट प्रतीकवादी चित्र अंकित थे। समय की उँगलियाँ उन को पोंछती जा रही थी, यह साफ़ मालूम हो रहा था।

माला का खुला यौवन, बरसाती नाले-सा उमड़ता रूप, अल्हड़ता से हँसती आग की लपटों में धुल कर और भी खिल उठा। उसने विस्मित आनन्द और चंचलता से चमकती पुतलियों से अपने नये घर को देखा। सामने बैठे लबालब पौरुष को देखा। कौतुहल से गुदगुदी-सी होने लगी।

मृगछाल पर नितम्ब टेके, सघन जंघाओं को भुजाओं में कसे, घुटनों की संधि के सामने उँगलियाँ फँसाये माला बैठी थी। माँसल भुजाओं में दबे उरोज आकुल-व्याकुल। उन के बीच बारीक रेखा भिंच कर दम तोड़ती हुई परेशान। माला की उनींदी अधखुली पुतलियाँ चंदनपर जमी थीं। सर्दी के कारण माला काँप-काँप उठती। शीत की एक चंचल लहर आई, माला सिहर उठी।

"इसे ओढ़ लो।" चंदन ने माला को मृगचर्म देते हुए कहा और कुण्ड में जलती लकड़ियों के कोयले झाड़ दिये।

"इतनी ठण्ड।" माला मृगचर्म को कन्धों पर सरकाते हुए बोली।

"बहुत सर्दी खा गई हो।" कह, चंदन ने मृगचर्म उस की पीठ पर ढक दिया।

"तुम भी तो काँप...ओह ...!" कहते हुए माला चन्दन के पास सरक आई।

"आग के सामने सर्दी नहीं ठहरेगी, माला।" चंदन ने एक बरछे से आग को फिर छेड़ा।

"हुँ—अइ।" माला, बराबर में, चंदन के बाँई ओर सट कट बैठ गई। चंदन ने अपना बाँया हाथ माला की कमर में डाल दिया। अलस लापरवाही से उसने मृगछाल शिथिल होकर गिर जाने दी।

"सचमुच, आज तो बहुत सर—उइ।" माला चंदन से और भी सट गई।

"अब भी?" चंदन ने उसे कस कर अपने वक्ष से सटा लिया। वह आकुलता से चीख उठी—'आह!'

"क्या है माला?" चंदन ने आशंका से पूछा।

" गिरने से चोट खागई हूँ—दुखता है ।" कहकर माला ने चंदन का हाथ पीड़ित वक्ष पर रखा ।

" यहाँ ?" चंदन ने वक्ष पर लटकता समूर तनिक हटाया और पीड़ित भाग को कोमलता से सहलाया। रीछ का नाखून लग जाने से जरा खुरच आगई थी, पर वह भाग दुखता था काफ़ी। उस भाग को चंदन ने कोमलता से सहलाना शुरू किया । वह भाग बहुत चिकना, कोमल और माँसल था ।

" यह धक्-धक् !" धड़कन को छूते हुए चंदन ने पूछा ।

" नहीं जानती। पर चोट पर कोमल मर्दनसे सुख सा मिलता है ।" माला अनजान रस पीते हुए बोली ।

चंदन सुकुमारता से कोमल माँसल उभार को मर्दन करने लगा। दोनों के शरीर में कम्पन बढ़ती जाती, साँस तेज़ होतीं जाती, हृदय-धड़कन में वेदनामय मधुरता झनझनाती जाती। माला को भी सुख अनुभव हुआ और चंदन को भी लगा जैसे उन्होंने नवीन सुख–रहस्य की खोज कर ली ।

कुण्ड में जलती हुई आग ठण्डी होती जा रही थी। रात तेज़ी से भागी जा रही थी। हवा तेज हो चली। पवन–तरंगें तीर की तरह गुफ़ा में आ घुसतीं। माला और चंदन का रोम-रोम सिहर उठता! पवन की चोट खाते ही अग्नि–शिखा काँप–काँप जाती! माला 'सी' करके चंदन से चिपट जाती!

" इतनी ठण्ड ; कभी पहले तो --!" माला ने चंदन को कस लिया!

" मृगछाल ओढ़ लो!"

" गुफ़ा का द्वार बंद कर दो!"

चंदन ने उठकर गुफ़ा-द्वार पर पत्थर रख दिया और आकर फिर माला के पास बैठ गया। माला उस से लिपट गई।

" क्या बहुत ठण्ड—? " चंदन ने माला को भुजाओं में कसते हुए पूछा।

" तुम्हें आलिंगन करके ठण्ड नहीं लगती। सचमुच, तुम में अग्नि-देवता का निवास है, चंदन। " माला ने अपना वक्ष चंदन के वक्ष से सटा दिया।

" तुम्हारे शरीर में भी तो अग्निदेव...। " चंदन उस को गाढ़ आलिंगन करते हुए बोला।

कातर पुतलियों से माला ने चंदन की पुतलियों में अपनी प्यासी तस्वीर देखी।

कुण्ड में जलने वाली आग मुरझा गई। दोनों में सोती हुई आग अँगड़ाई लेकर जाग उठी।

" चंदन! "

" माला! "

" दुखता है! " माला ने कातरता से कहा।

" क्या अब भी? " चंदन ने कोमलता से मला।

" आह! " और अनजान आकुलता, नवीन वेदना, मीठी बेताबी, तनमन की चंचल प्यास को बेहोशी में डुबा देने वाली मूर्छना!

वातायन से होकर हवा का तेज़ झोंका आया, अग्निकुंड में सिसकती लौ को फूंक मार कर बुझा गया!

राजधर्म

[फ़रवरी, १९४५]

लाहोर

उत्तरापथ में एक शैल-सरोवर। तट पर बैठा एक युवक करवट लेते हुए चाँदी-सी लहरों का खेल देख रहा था। सहसा एक हंस आया, पंख फड़फड़ाये, उस का ध्यान भंग हुआ, वह हंस को पकड़ने दौड़ा। हंस तीखी 'कौं-ऽ-ऽ—कौं—ऽ-ऽ' करते हुए सरोवर में जा गिरा। अपमान-भरी चुनौती—युवक भी 'छप्प'-से सरोवर में कूद पड़ा। घाटियाँ गूँज उठीं। क्षण-भर को सरोवर का वक्ष पिचक गया।

"हंस को पकड़ने का साहस मत करो।" निकट के कुंजों में से निकलते हुए किसी वन-सुन्दरी का आदेश घाटियों में गूँज गया।

युवक, तीर की-सी तेज़ी से तैरते हुए, हंस की तरफ़ बढ़ रहा था। उसने कुछ भी नहीं सुना।

"हंस को मत पकड़ो।" सुन्दरी ने फिर आदेश दिया।

"हंस को न पकड़ा, तो तैरने से क्या लाभ?" युवक ने पानी चीरते हुए कहा।

"इतनी स्पर्धा।" कह कर सुन्दरी भी पानी में कूद पड़ी। पहाड़ियाँ काँप उठीं। छपाछप के शब्द प्रतिध्वनित होने लगे।

धुला हुआ प्रभात। हिम-शिखरों पर फिसल-फिसल कर खेलती हुई

किरणें, चारों ओर खड़ी हँसती हुई पहाड़ियाँ और चाँदी के पानी से भरे ताल की गोद में तैरती हुई दो हठीली, दोनों अल्हड़, हंस को पकड़ने की धुन में पागल, चंचल जवानियाँ। हंस सरोवर के बीचमें था और वे दोनों आमने-सामने के किनारों से हंस की तरफ़ बढ़ रहे थे। हंस ने सुन्दरी को अपनी ओर आते देखा, वह चिकनी लहरों पर रपटते हुए उस के पास आगया। सुन्दरी ने मुसका कर हंस को पकड़ लिया और किनारे की ओर मुड़ चली।

"हंस को छोड़ दो, यह मेरा है।" युवक सुन्दरी की तरफ़ तैरते हुए बोला।

"जिस का है, उस के पास आगया।" उसने किनारे की तरफ़ तैरते हुए उत्तर दिया।

सुन्दरी ने दो-चार हाथ और मारे, तो किनारे पर आ निकली। वह स्वच्छन्दता से खिलखिला पड़ी। युवक भी उसी किनारे पर आगया।

"मेरा हंस, मुझे दो।" कहते हुए वह सुन्दरी की ओर बढ़ा।

सुन्दरी फिर खिलखिला कर हँस दी। युवक पराजयकी लज्जा से लाल हुए जा रहा था।

दोनों आमने-सामने खड़े थे। युवक—लम्बा, गोरा, सुडौल। खिंची हुई भवें, चौड़ा वक्ष और काले-काले उलझे-सुलझे बाल। पौरुष की स्वस्थ प्रतिमा। सुन्दरी—नशीली जवानी की सुषमामयी कल्पना। पानी से तर जैसे यौवन की लता से मदिरा चू रही हो। सघन गोल-गोल गोरी-गोरी जाँघें। वक्षस्थल पर बँधी काली ऊनी झीनी पट्टी भीगकर उरोजों के साथ एकाकार हो रही थी। एक-दो लटें भीग कर गालों पर चिपक गई थीं। वह एक हाथ में हंस लिये, दूसरे से उसे सहला रही थी।

"क्या थक गया है रे चंचल?" प्यार से वह बोली और नुकीले नयनों

का एक नशीला कटाक्ष युवक की ओर फेंका। युवक कुछ विचलित हुआ; पर बनावटी रोष प्रकट करते हुए, उसने कहा, "यह हंस मुझे दीजिए।"

"हंस मेरा है, कुशल साहसी, वीर तैराक।" कह कर सुन्दरी फिर व्यंग से हँस दी।

"स्वाधीन पंछी भी किसी का होता है, हठी नारी।" उस ने भी व्यंग्य किया।

"तभी तो तुम इसे पराधीन बनाना चाहते हो।"

"पराधीन तो तुमने बना रखा है।"

"तो लो—अब स्वाधीन!" कह, सुन्दरी ने खिलखिलाते हुए हंस को उड़ा दिया। वह फिर पर बाँध, टूटे तारे-सा पानी में जा गिरा।

"ओह—हंस पालतू है।" युवक सलज्ज विस्मय से बोला।

"फिर भी आप की हठधर्मी प्रशंसनीय है।" गालों की लटों को कमर पर फेंकते हुए सुन्दरी ने मुसकाकर कहा।

"तुम्हारी विजय हुई। पर मैं उस पराजय से लज्जित नहीं हूँ।"

"पराजित वीर का परिचय?" सुन्दरी ने उल्लास की आभा से चमकती हुई आँखों से पूछा।

"देवगिरि का सामन्त—अनंग।"

"यहाँ से दक्षिण की ओर, हेमक्षेत्र में हमारी झोपड़ियाँ हैं। हम जंगली तुच्छ पहाड़ी जन वहाँ आप का स्वागत करेंगे। अगर सामन्ती गौरव आज्ञा दे तो उधर आइये।"

"और चाहोगी तो बंदी बनालोगी।"

"तुम पंछी तो नहीं हो सामन्त।"

दोनों हँस पड़े।

"मेरा नाम चाँदनी है।" कह, सुन्दरी धनुष कंधे पर रख, हाथ में वाण सँभाल, लम्बे-लम्बे डग भरते हुए, दक्षिणी पहाड़ियों की ओर चलदी। हवा से खेलती उस की लम्वी-लम्बी लटों में उलझी अपनी पुतलियों को खोजते हुए अनंग विस्मय-विमुग्ध खोया-खोया-सा वहीं खड़ा रह गया।

*　　　*　　　*

चाँदनी और अनंग का प्रेम वरसाती नदी की तरह उमड़ता, जीवन की भूमि को सरस करता, कामना के किनारों को डुबोता शैल झरने की तरह स्वाधीन पथ पर वह चला। दोनों के मन किरण से रंगीन, फूल से कोमल, बसन्ती पवन से पागल। दोनों के जीवन स्वच्छन्द, वाधाहीन और दीवाने। सीधा-सादा जंगली जीवन, जिस में छल नहीं—दुराव नहीं। निश्चल प्रेम, जिस में दूसरे को पराजित करने की दुष्कामना नहीं—स्वेच्छाचार का लेश नहीं। चाँदनी ने अपने धड़कते क्षण, आशाभरी प्रतीक्षा की घड़ियाँ और तनमन की सिहरन-भरी अभिलाषाएँ अनंग को दे डालीं। अनंग ने अपने यौवन की माँग चाँदनी में पा ली।

पर्वतीय भोलेभाले समाज ने, जिस में जीवन ही जीवन है, जो सरल जीवन, स्वाभाविक भूख के लिये जागरुक है, न तो निषेध की उँगली उठाई और न वाधा के शूल उनके मार्ग मे बिछाये। बाबा ने भी वात्सल्यवश चाँदनी के सुख में विघ्न न डाला। अनंग और चाँदनी का प्रेम साकार हो उठा। बाबा पर प्रकट और चाँदनी की सखी रम्भा को भी इस की पूरी जानकारी। अनंग भी कई बार बाबा के पास आ चुका था और चाँदनी भी बाबा की जानकारी में अनंग के साथ कई बार सैर के लिए जा चुकी थी।

चाँदनी और अनंग कामनोंओं में लिपटे, आशाओं की चमक लिये, जवानी की मदिरा में खोये-खोये साथ-साथ घूमते। दोनों अनेक नये पर्वतों

की सैर करते। कितने ही नवीन सरोवर और झरने खोज निकालते, पर्वत की छाती पर बहुत-सी नई पगडण्डियाँ बना देते। निर्बाध चरण जिधर बढ़ जाते, नया मार्ग बन जाता।

आज भी दोनों सैर को जायँगे।

हेमकूट के किरीट पर सूरज के गोले की बारीक सुनहरी गोट-सी रह गई—वह भी गोधूलि में थके कर्म-सी विलीन होती जा रही थी। चंदा आकाश की चढ़ाई पर कई बरछे ऊपर चढ़ आया—आज पूर्णिमा है।

चाँदनी भी पूर्णिमा-सी निखरी, उत्साह-सी चंचल, कभी इधर, कभी उधर फुदकती फिर रही हैं। नये उत्साह, नयी उमंग से, नयी कामना से शृंगार कर कानन-श्री बनी है।

दोनों वेणियाँ, भावना-सी चिकनी चमकीली वक्ष पर खेलती हुई जंघाओं को छू रही हैं। उन के सिरों पर फूलों के गुच्छे बँधे हैं। वक्ष पर दूध सी साफ़ सफ़ेद पट्टी और सिर पर हरी गोट वाला काला रूमाल बंधा है, जिस की गाँठमें, बाँई ओर, कान के ऊपर, दो छोर लटके हैं। उसी गाँठ में रंग-बिरंगे तीन पंख खुसे हैं-जो सिर घुमाने से चमक--चमक जाते हैं। कटारा-सी आँखों में नुकीला काजल लगा है। कानों में दो सिरस-कुसुम पिरोये हुए हैं। वेणी-बंधन से मुक्त एक-दो लटें मस्तक और कपोल पर पड़ी वेताब हो रही हैं। कलाईयों में भी फूलों के गजरे शोभित हैं।

चाँदनी बाहर जाने को तैयार कि बाबा आ गया। धनुष-बाण एक तरफ़ डाल, मृत मृग-शवक पास रख, उसने थकी मुसकान से चाँदनी को देखा।

"चंदा, किस उधेड़बुन में लगी है?" पैरों को सहलाते हुए बाबाने बातचीत शुरु की।

"चंदा—चंदा आज शिकार ...।" वह अनजाने में कह गई।

" शिकार ?—पागल तो नहीं ? "

चाँदनी ने कच से अपनी जीभ काटली। सँभल कर बोली, " नहीं बाबा, आज पूर्णिमा है न। "

" हाँ, पूर्णिमा है। " कह, बाबा ने उस के कंधे पर हाथ रख, पास बैठा लिया।

" आज नये पहाड़ों की सैर करेंगे—मान सरोवर भी। "

" आज बाबा को बढ़िया गोश्त नहीं खिलायगी—देख, कितना सुकुमार मृग मार कर लाया हूँ। "

" अच्छे बाबा, कल—आज तो। " चाँदनी ने अनुरोध किया।

" आज तो घर पर ही पूर्णिमा मनाते, नाचते-गाते। कभी फिर चलेंगे। मैं तुझे साथ ले चलूँगा। "

" नहीं—मेरे अच्छे बाबा ! आज अनंग भी हैं। दोनों जायँगे। वह गौमुखी मोड़ पर खड़े होंगे। देखो, चंदा कितना ऊपर चढ़ आया। बड़े बुरे हो— इतती देर करादी। " चाँदनी ने बालकों की तरह बाबा को झखझोर डाला।

" अरे पगली—मै तो वैसे ही थका हूँ। "

" तो जाऊँ ? " कह कर चाँदनी खड़ी हो गई।

" तेरी खुशी—जिस से तू प्रसन्न रहे। अनंग एक सामन्त और हम, खैर, जा। "

" मेरे अच्छे बाबा। " कह कर चाँदनी ने प्यार से बाबा को कोमल अलिंगन दिया।

" जल्दी आजाना। जा पगली। " गाल पर हल्की-सी चपत लगा कर बाबा झोंपड़ी में चला गया। चाँदनी नई शक्ति समेटे लम्बे-लम्बे क़दम रखते

हुए झोंपड़ियों से १०--१२ पग निकली थी कि रम्भा मिल गई।

"किधर चली?" उस ने रहस्यपूर्ण कटाक्ष फेंक कर कहा।

"शिकार करने?"

"खुद तो शिकार हो चुकी, अब क्या शिकार करोगी।"

"तेरा सिर!" चाँदनी ने सलज्ज मुसकान से कहा और रम्भा खिल-खिलाते हुए झोंपड़ी की ओर चली गई। चाँदनी को, दस-बीस पग चलने पर, अनंग मिल गया।

दोनों चमकती पुतलियां, उछलते हृदयों, तालभरे पगों से सूखे पत्तों को चरमर-चरमर करते सामने के कुंजों की ओर चल दिये—जहाँ हरियाली की सेज पर किरणें छाया और उजियाली का जाल बुन रही थीं।

* * * *

प्रभात—जगमग झिलमिलाता, सुनहरे आलोक में नहाता, पुलकित-प्रसन्न, वैसा ही-जब चाँदनी और अनंग का मिलन हुआ था। उस प्रभात में चाँदनी पहाड़ी झरने-सी चंचल, कामना-सी रंगीन, जवानी-सी दीवानी। पर यह प्रभात वैसा होते हुए भी वैसा नहीं, चारों ओर आशंका का धुंध और संदेह की बदलियाँ।

चाँदनी अपनी झोंपड़ी के द्वार के पास शिला पर बैठी, किसी की बाट में पुतलियां दौड़ाते, हृदय-धड़कन गिन रही है। पुतलियों में सूनापन, आनन पर उदासी. मस्तक में कितनी ही आशा-निराशाएँ, शंकाएँ—आशंकाएँ। गाल पर हथेली धरे, नीचे, ठलुआ भूमि में दौड़ती पगडण्डी पर, वह अपनी परेशानियों का उत्तर तलाश कर रही है।

अधिक समय न लगा, भेड़-बकरियों का एक झुण्ड पगडण्डी पर रेंगते हुए दिखाई दिया। थोड़ी दूर पर वह ठहर गया। उसमें से निकल कर एक जवान

दो साथियों को लिये लम्बे-लम्बे डग भरते हुए चाँदनी के सामने आ गया। चाँदनी चमक कर खड़ी हो गई। दोनों साथी धनुष-वाण सँभाले ५-६ पग पीछे ही ठहर गये।

"चाँदनी।" कह कर उसने सिर झुका लिया।

चाँदनी ने मौन खोई-खोई आँखों से उसकी ओर देखा। साथियों ने पराई-सी आँखें चाँदनी पर डालीं।

"चाँदनी मैं विवश हूँ।"

"क्या किसी तरह भी नहीं ठहर सकते सामंत ?"

"राज की दशा मुझे विवश कर रही है, चाँदनी।"

"विद्रोह हो जाने की आशंका है।" एक साथी ने बात स्पष्ट की।

"चुप रहो।" उसे डाटकर चाँदनी ने अनंग से पूछा, "हाँ, तो मेरे लिये क्या सोचा है सामंत ?"

"कुछ भी नहीं सोच पाता।"

"जो मालूम होता, तुम सामंत हो तो मैं कभी हृदय न देती। मैंने तुम्हें एक मनुष्य समझा था, सामंत नहीं। तुम पाषाण-हृदय !" कहते-कहते चाँदनी का गुलाबी मुँह ताँबे-सा तमतमा गया।

"सँभाल कर बोलो, सुन्दरी।" दूसरे साथी ने रोश में कुछ कहना चाहा; पर अनंग ने संकेत से उसे रोक दिया।

"प्रजा को सँभालना, उसके सुख-दुख का ध्यान रखना भी तो मेरा कर्तव्य है।" अनंग ने धीरे से कहा।

"एक भोली हिरनी को प्रेम-जाल में फँसा कर घायल कर दिया, एक सरल मुग्धा का रूप-रस पीते रहे—तब कहाँ गई थी तुम्हारी प्रजा-वत्सलता, प्रजा-हितैषी सामंत ?" तेज़ी से झोंपड़ी में से बाहर आते हुए रम्भा

बोली। उस के व्यंग का तीखा तीर अनंग के हृदय को छेद गया। वह व्यथित होकर बोला, "मैं विवश हूँ चाँदनी।"

"तो मेरे लिए यही उत्तर है?"

"कैसे कहूँ?"

"किसी भी भोली-भाली नारी को छल से अपना बना लेना, उसका विनाश करके चल देना, ये रूप के लोभी, शासक--सामन्त।" रम्भाने फिर तिरस्कार-पूर्ण व्यंग्य किया।

"इतना आहत न करो रम्भा।" अनंग सलज्ज वेदना से बोला।

"अब भी सोचलो सामंत, एक निरपराध नारी का नाश करके न जाओ। मेरे जीवन की बगिया में आग लगा कर मत जाओ। क्या मेरे हृदय का यही मूल्य है, निर्मम सामंत?"

"चाँदनी, मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। प्रेम को निर्वासित करना ही पड़ेगा। तुम्हारे कारण ही प्रजा विरुद्ध हो रही है। तुम्हीं बताओ चाँदनी, क्या प्रजा को विद्रोह करने दूँ?"

"अत्त्याचारी नृशंस, मेरे जीवन में आग लगाकर भाग जाना इतना सरल समझते हो। आज प्रजा का इतना ध्यान? मैं नीच जंगली—और तुम राजवंशी। तब नहीं याद आया, यह वंशाभिमान। मेरा सब-कुछ लूट चुके, अब वंश-मर्यादा जागी। आज जागा यह कुल-गौरव? प्रपंची प्रेमी, छली मानव—तुम कायर योद्धा। तुम चाँदनी के प्रेम को इस तरह ठोकर मार कर नहीं जा सकते।" चाँदनी ने क्रोध से काँपते हाथों से पास पड़े हुए धनुष बाण उठा लिये।

"मैं तैयार हूँ चाँदनी।" अनंग ने स्थिर भावसे कहा।

"सँभल जाओ, विश्वासघाती। एक जंगली नारीका प्रेम तो तुम देख

चुके, क्रोध भी देखते जाओ। नीच चाँदनी का आत्मसमर्पण तो तुम ने देखा ही, प्रतिकार भी देखलो। छद्मवेशी सामन्त, अपनी रक्षा करो। धनुष सँभालो, चाँदनी के विनाशक प्रेमी, अपनी रक्षा करो। हृदय की हारजीत से हमारा मिलन हुआ, प्राणों की हारजीत से विछोह होगा। ” कहते कहते चाँदनी ने धनुष पर वाण चढ़ा लिया। ५-६ पग पीछे हटी, अनंग की छाती पर तीर तान दिया। वह कहाँ है, कौन है, सामने क्या है—सब विस्मृत। कानों में जैसे सैकड़ों झींगुर वोल रहे हैं—आँखों में जैसे सितारों-भरा आसमान दौड़ा जा रहा है।

अनंग के दोनों साथी विचलित हुए। और कुछ वे करें, इससे पहले ही, अनंग ने डाट दिया — सावधान

पीली मुसकान से फिर चाँदनी की ओर देखा—नारी का भीषण प्रतिशोध-रूप।

“ धनुष उठाओ—वाण चढ़ाओ। फिर शक्ति-परीक्षा है। अपनी रक्षा करो—धनुष उठाओ सामन्त ! ” चाँदनी पागल-सी हो तीखी आवाज़ में चिल्ला पड़ी।

अनंग कुछ अस्थिर हुआ। उसने सहम कर चाँदनी की तरफ़ देखा—उबलती आँखें, पथराई पुतलियाँ, तेज धौंकनी-से नाक के सुर ! ताँबे-सा तपता मुँह, पाषाण-प्रतिमा की तरह कान तक डोरा खींचे, तीरके परों के पास भवें मिलाये, वाण छोड़ने को तैयार। रम्भा भी चाँदनी का यह भयंकर रूप देखकर सहम गई।

अनंग ने चाँदनी की बर्फ़ जैसी जमी हुई पुतलियों पर अपनी दृष्टि फिसलाते हुए पलकें गिरालीं।

चाँदनी फिर पागलों की तरह फटी-फटी वाणीमें चिल्लाई, “ अपनी

रक्षा करो। मेरा बाण आया। प्राण बचाओ सामंत। निर्मोही सामन्त, अपनी रक्षा........मेरा विषैला बाण.. तुम्हारे प्राण...।" और किसीने तीर की तरह आकर चाँदनी का हाथ पकड़ लिया, "चंदा–हुश पगली।"

"नहीं-नहीं, आज इसे...।"

"बावली होगई क्या—हिश्ट।"

"इस विश्वासघाती को... मैं इस के अपराध का दण्ड दूंगी। मैं--मैं आज इसे...।"

"सामन्त हमारे अतिथि हैं चंदा, और अतिथि सदा क्षम्य हैं, बेटी।" चाँदनी की कमर पर वेदनामय वात्सल्य से हाथ फेरते हुए उसने कहा। चाँदनी ने मुड़ कर देखा। धनुषबाण फेंक दिया। "बाबा–बाबा!" कह चाँदनी उस के हृदय से चिपट कर सिसक पड़ी। बाबा की आँखें भी छलक आईं।

"दण्ड दीजिये बाबा। अपराधी अनंग को दण्ड दीजिये।" अनंग ने सिर झुका कर कहा।

"दण्ड देना राजाओं का काम है। हम बनचारियों के पास जो कुछ था, हम दे चुके।" बाबा ने सारलता से उत्तर दिया।

चाँदनी बाबा के हृदय से लगी सिसकियाँ भरने लगी। रम्भा की आँखें भीग गईं। बाबा छलकती पलकें लिये चंदा की कमर पर हाथ फेरने लगा। अनंग पराजित अपराधी की तरह खड़ा रह गया। साथी इस घटना को समझने में अपनी लड़ाका बुद्धि का दुरुपयोग करने लगे।

क्षणभर के दम घोटने वाले मौन को चीर अनंग के शब्द बाबा और चाँदनी के चरणों मे बिखर गये।

"आज्ञा दो बाबा। राजधर्म–कठोर निष्ठुर राजधर्म–मुझे बाँधे है। पराजित होकर चाँदनी से मेरा प्रथम मिलन हुआ। अब पराजित

होकर विदा ले रहा हूँ। क्षमा करो चाँदनी, पराजित अनंग को, चिर अपराधी सामन्तः को।"

उच्छवासित हो अनंग ने सिर झुका बाबा को प्रणाम किया। चाँदनी ने बाबा के हृद्य से लगे-लगे भीगी दृष्टि से देखा— अनंग शिथिल चरण ढाल से उतर कर पगडण्डी पर चला जा रहा है। भेड़-बकरियों का समूह चाँदनी की सजल कामनाओं को-उस की विवश धड़कन को रौंदते हुए उस के पीछे-पीछे रेगँ रहा है।

निष्काम

[मई, १९४५]

लाहोर

राकेश बिस्तर में पड़ा, खौलते पानी के फेन की तरह छटपटा रहा था।

अंग–अंग में तेज़ कसाव, जोड़-जोड़ जैसे अधपका घाव, हड्डियों में बिच्छू के डंक की-सी जलनभरी पीड़ा। तेज़ बुखार–पास कोई नहीं। सर्दीसे दाँत बज–बज उठते, नस नस में हिमधारा-सी दौड़ जाती, शरीर भुना-सा जा रहा था। शीत की लहर आती, जोड़–जोड़ ढीला हो जाता। बुखार की लपट लहराती, हड्डियाँ खोखली करजाती। राकेश तड़प-तड़प जाता—पीड़ा से 'हाय-हाय' कर उठता।

प्यास से बेताब–जीभ तालू से लग गई। सहसा सरूप आया तो विस्मय वेदना से हक्का-बक्का रह गया।

"राके—अरे अकेले!" कह उसने राकेश का मस्तक छुआ–जैसे ग्रीष्म की दोपहरी में चट्टान। राकेश को पानी पिला, गिलास और सुराही पास ही, तिपाई पर रख, फिर मस्तक पर हाथ रखा, नाड़ी देखी, पसलियों पर हाथ फेरा। हाथ-पैर ठण्डे ओला और माथा जलता तवा। सँभाल कर कम्बल उढ़ा, उसे धीरज दिया।

"सेण्टफ़्लाइ है—मर्दूद हड्डियाँ हिला देता है। तारा को भेजता हूँ। गोलियाँ भी...घबराना मत—।" सरूप चलने को हुआ।

"जोड़–जोड़ निकला जा रहा है। आ–ऽ–ऽ–ऽ–ऽ अइ। बड़ी ठण्ड जल्दी......ताराको...।" राकेश काँपते हुए बोला।

"गोलियाँ खाईं कि छूमन्तर। अब आई तारा। घबराना मत। गोलियाँ भी ......अच्छा।" कह सरूप ने एक-दो बार राकेश की कमर थपथपाई, हल्केसे गुदगुदी की, राकेश को वेदनामय हँसी भी आगई। सरूप ने उसे फिर ढाढ़स दिया और कमरे से बाहर।

राकेश काँपते-कराहते, जलते-झुलसते तारा की प्रतीक्षा करने लगा। एक सैकिण्ड जैसे जाड़ों की अमावस। दो मिनट भी न बीते, प्रतीक्षा सूखा पहाड़ बन गई। इन लघु क्षणों में ही राकेश की आँखोंमें कुमार–जीवन की बहार और बेचैनी, विलास और वेदना, चहलपहल और उदासी बर्फ की चट्टान बन कर जम गई।

चारों ओर मदगंध फूलों की क्यारी, जिस के जीवन के कोने-कोने में नशा भरने को आकुल, आज वह अकेला। जिस के ओठों पर जीवन का सारा रस एक बार ही उड़ेल देने को कितनी ही रसीलियाँ बेताब, आज एक प्याला पानी भी......। अभी तक नहीं आई। क्यों आवे! उस की इच्छा। मेरा अधिकार भी उस पर क्या। कहीं गपशप हो रही होगी। अपने सुख में कोई ठोकर क्यों मारे – और किस के लिये। सोचते–सोचते राकेश झुँझला उठा—स्वार्थी, हृदयहीन, पाषाण। मैं तड़प कर मर जाऊँ, तुम्हें क्या। तारा, ओह तारा! पर मैं तुम्हारा हूँ भी कौन? तुम्हारे समर्पण के लिये स्नेहभरा लघुसा एक स्पर्ष भी नहीं। मैं इतना कठोर—इतना निर्दय। मैं—मैं इतना निर्मम! तारा–ओह तारा, तुम भी क्या? और रजनी?—रजनी वह...तो...

सोचते–सोचते राकेश की आँखें भीग गईं। तारा के लिये उस की निर्ममता जैसे पिघल पड़ी। 'आह' राकेश ने करवट ली और केटली

लटकाये तारा आगई। केटली तिपाई पर रख, पलंग पर बैठ, उसे अपनी तरफ़ करते हुए बोली, "राके - अरे राकेश।"

राकेश ने करवट न ली—वैसे ही पड़ा रहा।

"राकेश लो न, अच्छे राके।" तारा ने उसे अपनी तरफ़ कर लिया। आँखें तर। तारा सहम गई।

"अभी ठीक हुए-ये गोलियाँ।" कह ताराने गिलास में चाय उड़ेली।

"तुम्हें फ़ुर्सत मिल गई तारा? चाहे मैं मर भी जाऊँ—तुम्हें क्या! जाओ—मैं नहीं।" ममतामय रोश में राकेश बोला।

"अभी ठीक हुए, लो ये गोलियाँ, अच्छे राकेश।" तारा ने उसे वक्ष के सहारे बैठा लिया।

"नहीं—मैं नहीं। जाओ।"

"तुम्हें मेरी क़सम। रूठ गये? मुझे माफ़ करदो राके।" चुमकार-पुचकार कर तारा ने दो गोलियाँ उस के ओठों पर रख दीं। वह उन्हें सटक गया। तारा ने गिलास उस के मुँह से लगा किया। वह आज्ञाकारी बालक की तरह, चाय के साथ दोनों गोलियाँ निगल गया।

ताराने उस का सिर जाँघ पर रख, सहलाना शुरु किया। राकेश का माथा तप रहा था, शरीर जला जा रहा था। वह सर्दी से काँप-काँप जाता-दर्द से बेचैन हो उठता।

"तारा, नस-नस टूटी जा रही है। आह—ता-ऽ-ऽ-रा...।" सर्दी से काँपते हुए राकेश ने अपने दोनों हाथ तारा के गले में डाल दिये।

"सर्दी कम हुई? ये गोलियाँ—बस अब ठीक हुए।" ताराने उसे प्यारसे ढाढ़स दिया।

"बहुत ठण्ड। चा...ऽ...ऽ...दर। आ..." ताराने उठकर उसे

ऊनी चादर उढ़ा दी।

सर्दी कम नहीं—वह बराबर काँप रहा था। तारा उस के बराबरमें बैठ दोनों हाथों से कमर दबाने लगी। माथा सहलाने लगी। वह अब भी बड़ा बेचैन—हड़कम्प कम नहीं। दर्द की हूल-सी उठती, 'आह' निकल जाती। सिर में कुलन होती, वह चीख उठता। इसी तरह छटपटाते-कराहते हुए ग्यारह बज गये।

"ज़रा भी कम नहीं क्या?" तारा ने उसे सीधी करवट कर माथे पर हाथ रखा—जल रहा था।

"तारा।"—राकेश के एक शब्द में ही सारी पीड़ा और बेताबी छटपटा गई।

"घबराओ मत। उतार पर है अब तो।" ताराने ज़रा नीचे झुक उसे प्यार से बहलाया।

"आह—हड्डियों में जैसे।" काँपते हुए राकेश बोला। तारा ने एक और चादर उढ़ा दी। घड़ी की तरफ़ देखा, बारह बज गये। तारा तड़प उठी। अभी तक ज़रा भी कम नहीं। डाक्टर बुलाऊँ? क्या करूं? भाई साहब भी नहीं। किसे भेजूं। यहाँ कौन रहेगा? अकेले छोड़ कर भी कैसे जाऊँ?

"जरा भी कम नहीं?" तारा ने व्यथित हो कर पूछा।

"दर्द तो कुछ, पर सर्दी—और तुम यहाँ कब तक?"

"सर्दी भी कम हो जायगी।"

"घर नहीं जाओगी तारा?—बारह तो। अ...ऽ...ऽ...ऽ . अइ। आ...अई।" सर्दी की लहर आई, वह थर-थर काँप गया।

क्षणभर में ही तारा की आँखों से कितने ही अपवाद चित्र गुज़र गये। कानों में अनेक निन्दा-वाणियाँ गूँज गईं। विचार मात्र से ही जैसे उस की

नस नस में विष दंशन चुभ गये। सब कुछ हो, पर यह न होगा। अकेले छोड़कर? कभी नहीं।

राकेश की सर्दी और भी बढ़ गई। उसे लगने लगा जैसे हड्डी हड्डी चटखी जा रही है। जोड़ खुले जा रहे हैं। उसने फिर तड़प कर कहा, "आह तारा" और दोनों हाथ तारा के गले में डाल दिये। पीड़ा से व्याकुल राकेश की पुतलियाँ भीग गईं। तारा सिहरनभरी वेदना से नीचे झुकी। प्यार से राकेश के गाल छूते हुए, चुमकार कर बहलाया, "दिल इतना कच्चा ना करो। घबराओ नहीं, अभी ठीक हुए। मेरे राकेश—मेरे अच्छे राकेश।"

"तारा।" राकेश फिर आहत वाणी में बोला।

"कलेजा चीर कर कैसे दिखा दूँ राके। अगर प्राण देकर भी...।" तारा ने छटपटा कर कहा।

राकेश ने कातर भीगी पलकों से तारा की ओर देखा! वह सिहर उठी। रोम-रोम बेताब हो उठा। आँखें भी नम हो आईं। ढाढ़स देने को अधलेटी-सी हुई और अनजान प्रेरणा से राकेश के बराबरमें लेट गई।

"तारा—ना।" काँपते हुए राकेश बोला।

"मेरे बीरन—मेरे लाल!" तारा ने कातरता से अपने शीतल कपोल राकेश के कपोलों पर रख दिये। वक्ष से वक्ष मिला, उसकी कमर थपथपाने लगी। सर्दी कम नहीं। राकेश की थरथरी बँधी थी। अब भी हड़कल और कुलन—दर्द और बेचैनी।

ठण्ड की सुरसुरी-सी आई। राकेश काँप गया। तारा ने उसका बायाँ हाथ अपनी कमर पर डाल, अपने दाँये हाथ से कस कर उसे वक्ष से लगा लिया। वह अब भी काँप रहा था। वह उसे वक्ष से कसे लेटी रही। उस के कुमार-हृदय में माँ की ममता उमड़ आई — वात्सल्य की बाढ़ आगई।

राकेश शिशु के समान मौन और निश्चल उस के वक्ष से चिपटा पड़ा रहा। जब वह ठण्ड से काँपता, तारा और भी कस कर उसे कलेजे से लगा लेती।

एक बजते-बजते राकेश शिथिल होने लगा। आँखों में नींद झाँकने लगी। गोलियों का प्रभाव, तारा के शरीर की गर्मी—राकेश की कँपकँपी बंद होगई। वह शरीर ढीलाकर सोता रहा। ताराने धीरे से उस का सिर अपने वक्ष पर रख लिया। वह थके पंथी-सा तारा के कोमल वक्ष की शैया पर, उस के प्रेम-आशीर्वाद-भरे पलकों की छाया तले बेहोश होगया।

तारा अपने सिहरन भरे रोम-रोम से राकेश को प्यार करती थी। उस का चंचल मन राकेश की मुसकान की छाया में बसेरा लेता था—उसके आकुल प्राणोंकी प्यासी कामनाएँ राकेश में नीड बनाएँ हुए थीं। वह सब कुछ दे चुकी थी, बदले की कामनासे नहीं। राकेश के लिये आत्मत्याग करने में उसे उसके अरमानों का उत्तर मिल जाता था। आज उस का प्रत्येक पुलक स्वर्ग को आलिंगन कर रहा था। आज तारा की हर एक सांस पागल होकर राकेश को कस लेना चाहती थी। आज तारा की हर धड़कन में बेसुधी तड़प रही थी। तारा को लग रहा था — उस ने सब कुछ पा लिया।

तारा सुख-विह्वल, आनंदाकुल, कल्पना-गदगद स्वप्न-लीन हो राकेश को वक्ष पर लेटाये पड़ी थी। और राकेश मीठी धड़कन-भरे उसके सुकुमार हृदय पर बेसुध शिशु सा सोता रहा। तारा की आँखों में अनेक चमकती तस्वीरें नाच रही थीं – कितने ही मूर्छना-भरे युग बीते जा रहे थे—उस की नसों में कितने ही मृदु कम्पन-भरे सपने बह रहे थे।

* * *

अख़बारवाले चिल्लाने लगे। वातायनसे किरणें भी भीतर उतरने लगीं। ६ बज गये। राकेश अब भी सो रहा था। किसी की पग-चाप ध्वनि सुनाई

दी। ताराने धीरे-से राकेश का सिर तकिये पर रख, पैर पलंग के नीचे रखे ही कि रजनी भीतर आगई।

रजनीने देखा— तारा चमकती पुतलियों, मुसकाते अधरों और आनन्द कम्पित साँसों को लिये सामने खड़ी है। रजनी को देख तारा लाजभरी मुसकान का रस चूसते हुए अपनेको सँभालने लगी। मुसी हुई साड़ी, अस्तव्यस्त केश, निर्बन्ध ढीली चोली और उरोजों के पास सघन लाली। रजनीने उसे पढ़ने के लिये गहरीं दृष्टि डाली। तारा ने ज़रा मुसका कर चोली के बटन लगाये। साड़ी की सरवटें निकालीं और बालों को दोनों हाथोंसे पीछे कर लिया।

"तारा।" गर्म उच्छ्वासोंमें चेपटें खाते हुए रजनी बोली।

"अभी सोये हैं। मैं चलती हूँ। तू यहीं बैठ।" कह चमकती पुतलियों में मुसकाते हुए तारा कमरेके बाहर हो गई।

राकेश सो रहा था। रजनी पास ही कुर्सीपर बैठ गई। तारा के— मुसी साड़ी और खुली चोली वाले— रूप ने रजनी को बेचैन कर दिया। वह बैठी तो थी; पर जैसे बवण्डर में उड़ी जा रही हो—तूफान में चपेटें खा रही हो। वह अपने को भूल गई। क्षणभर भी बैठना जहर सा लगने लगा।

नारी—कल्पनाने जाल बुन डाला। सन्देह और आशंका ने उसे झकझोर डाला। काल्पनिक व्यथानें उसका हृदय मथ डाला। तुम तारा! छलना— विश्वासघात। यह निर्लज्जता। बिषभरी मुसकान। और क्या राकेश भी वह न रहे? मैं ही अब तक मूर्ख बनती रही। ओह नारी हृदय—कितना रहस्यपूर्ण। पुरुष कितना छलनामय! तारा तूने मुझे पराजित कर दिया; पर मित्र का गला काटना।

पाँच मिनट में ही रजनी की साँसें जलने लगीं। उसने विचलित हो, जाने क्या-क्या सोच डाला। तुम रात-भर यहाँ रहो। अभी सोये हैं। मैं यहीं

बैठी रहूँ। जैसे मुझे चुनौती हो। अपनी सफलता पर यह अभिमान-भरा व्यंग्य। सोचते-सोचते रजनी अपने पर काबू न रख सकी। रोशमें आ राकेशको सोता छोड़, तारा के घर चलदी।

तारा चाय तैयार कर रही थी—उसी वेशमें। रजनी तेजीसे उसके सामनेप हुँची। पराई-सी, भर्राई-सी, कम्पित-सी वाणी में बोली, "तारा।"

ताराने रजनीका नवीन रूप देखा और शैतानी-भरी मुसकान से चाय केटली में लौट दी।

"तारा, तुम से ऐसी आशा नहीं थी।"

"मुझे स्वयं भी अपनेसे ऐसी आशा न थी रज्जो; पर समय की माँग—स्थिति की विवशता, इस के सिवा और क्या कहूँ?"

"समय की माँग—स्थिति की विवशता या छलना-विश्वासघात। मेरे विनाश पर उतारू। अब भी वही विषैली मुसकान। आखिर मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, तारा? ओह—नारी, मैं तुम्हें आज समझ पाई।"

"आज भी नहीं समझ पाई, नादान छोकरी।" तारा अब भी मुसका रही थी। रजनी जलभुन उठी, तड़ककर बोली, "मेरे भी आँखें हैं—मैं अंधी नहीं। सब-कुछ देख. चुकी। अब भी मुझे ठगने की कोशिश। तारा, तुमने यह क्या किया?"

"पागल तो नहीं हो गई रज्जो।" तारा जरा गम्भीर होकर बोली।

"मैं पागल?— मैं पागल नहीं; पर तुम पागल बना कर छोड़ोगी! तारा तुम- - - और राकेश भी। कभी सपने में भी न सोचा था। भयंकर षड़यन्त्र। मेरे जीवन में आग मत लगाओ तारा—मेरा दिनाश मत करो। अपना बनाकर विष देना—हृदयहीन मैंने तुम्हारी छाया में अपने को सौंप दिया था। बड़ी बहन समझा। ओह तारा, तुमने यह क्या किया?"

"यही बड़ी बहन का सम्मान है? यह तो न हुआ, पाँच मिनट वहाँ बैठती। झगड़ा करने को यहाँ आ धमकी, कालेज न जाय, तो यह चाय ले जा। उठ गये होंगे। दो गोलियाँ एक प्याला चाय के साथ।" कह तारा ने केटली रजनी की तरफ बढ़ाई। रजनी ने क्षणभर तारा का गम्भीर मुख देखा। बिना हिले--डुले खड़ी रही। इतने में भाभी भी आकर बोली, "हाँ, अरे रज्जो आगई। चाय लिये जा। यह कमबख्त रात-भर सोई नहीं। आते ही चाय में लग गई। जरा कपड़े बदल ले — तब तक तू .. अच्छी रज्जो।"

रजनी ने सहमी दृष्टिसे दोनों को देखा।

तारा फिर तीखे स्वर में बोली, "जा, नहीं तो ठण्डी हो जायगी। और अगर शान में बट्टा लगे, तो जो कमबख्त उस की गुलामी करते मरती है, वह अपने आप चली जायगी।"

तारा की आज्ञा टालने का साहस उसे न हुआ। उस का हाथ मशीन के पुर्ज़े की तरह आगे बढ़ गया। तारा ने उस के हाथ में चाय थमादी आर रजनी धीरे-से कमरे से बाहर होगई।

* * *

रजनी राकेश की तरफ आ रही थी। पैर हवा में पड़ते-से लगते। यह क्या? भाभी सब कुछ जानती है। तारा रात-भर राकेश के पास जागती रही। भाई साहबको भी मालूम है। गोलियाँ-चाय, मामला क्या है। रजनी विभिन्न कल्पनाओंमें खो गई। पर कुछ भी समझमें न आया। कभी ताराका चंचल मुसकान-भरा मुसा हुआ रूप सामने आता, कभी तीखे स्वर में आज्ञा देतें हुए गम्भीर मुद्रा आँखों में झाँक जाती।

रजनी आई तो राकेश जाग गया था। देखकर सहम-सी गई। उजड़ा

हुआ रूप, थकी-हारी देह, पीला रंग। तारा इतनी प्रसन्न थी और राकेश का यह हाल। रजनी हतप्रभ हो परिस्थिति को पढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

" आगई ? " राकेशने शिथिल वाणीमें कहा।

" तारा ने चाय भेजी है— दो गोलियाँ इस के साथ। " कह रजनी ने गिलास में चाय उड़ेल, राकेश की तरफ़ बढ़ाई।

" अजीब लड़की है। कितना कुछ करती हैं—और मुझ से कोई आशा भी नहीं। " कह राकेश ने दो गोलियाँ निगल, चाय पीली।

" तबीयत कैसी है ? "

" अब तो ठीक है। रातभर कराहता रहा। तारा न होती तो... कमबख्त एक मिनट को भी सुस्ताई तक नहीं — यहीं मरती रही। पता नहीं, किस धात की बनी है। यहाँ से गई कब, न जाने ? "

" मेरे आने पर—क़रीब सात बजे। "

" हूँ। और तू कालेज नहीं जायगी ? "

" आज मन नहीं है। "

" सोचता हूँ, जरा डाक्टर के यहाँ हो आऊँ, कलसे पड़े-पड़े उकता गया। साढ़े नौ तो बज रहे हैं। "

" जा सकोगे ? "

" क्या बिल्कुल निर्बल समझ लिया ? "

" अच्छा पहलवान साहब, नमस्ते। " मुसकाकर रजनी बोली। राकेश भी हँस दिया।

ऊनी चादर ओढ़ राकेश जाने को तैयार हुआ तो तितली- सी फुदकती तारा आगई।

" आप भी क्या खूब हैं। हम आये तो श्रीमानजी चलने लगे।

घर आये मेहमान का यह स्वागत ?" तारा ने वातावरण में और भी मिठास घोल दिया। रजनी उसे देखते ही सहम-सी गई।

"घड़ी-भर को तो आराम कर लेली। जाकर सोजा। रात-भर मरती रही।" राकेश प्यारसे बोला।

"अच्छा जी, पीछा छुड़ाने का यह बहाना। हो तो बड़े चालाक।" तारा ने हँस कर कहा।

"तो तुम लोग तब तक गपशप करो। मैं ज़रा डाक्टर के यहाँ...।" कहकर राकेश चलने लगा।

"वाह, जैसे हमें कोई काम ही नहीं—अपन तो चले।"

तारा चमकती आँखों में मुसकान खिलाते राकेश के साथ चलने लगी तो रजनी ने उस की साड़ी का छोर पकड़ अनुनय पूर्ण पुतलियाँ उस की आँखों में डाल दीं। तारा ठहर गई। राकेश ज़ीने से नीचे उतर गया। ताराने रजनी की तरफ़ देखा। रजनी ने ताराकी तरफ़ देख पलकें गिरालीं। उस की आँखें डबडबा आईं।

"क्या है रज्जो ?"

"मुझे माफ़ करदो तारा।"

"अरे हुआ क्या—पगली ?"

"तारा—तारा बहन मुझे...।" रजनी ने तारा के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और आँसुओं में फूट पड़ी।

"रज्जो। अरी बावली कहीं की—हिश्।" तारा ने उसे प्यारभरी सान्त्वना दी।

"अपराध हुआ तारा। तारा माफ़ नहीं करोगी ? बड़ी बहन तारा अपनी रज्जोको...।" रजनी सिसक कर ताराके कलेजे से लग गई। तारा

उसके आसूँ पोंछ, उसे चूमकर बोली, " रज्जो मामूली-सी बातोंपर इस तरह बह निकलना—इतनी निर्बलता। जो हुआ, कोई अपराध तो है नहीं। और मैं तो दोनों की नौकरानी हूँ–चार गालियाँ भी मिलेंगी तो अंचल पसार कर लेलूँगी। "

" ऐसा न कहो तारा--तारा बहन। " रजनीने सिसकते हुए तारा के मुहँ पर हथेली रख दी।

तारा की आँखें डबडबा आईं। रजनी ने भीगी आँखों से देखा और फिर सिसकी भर तारा को कस लिया।

आस्तिकवाद

[अक्टूबर, १९४६]

दिल्ली

चाहे वार्डर चकमा खाये–मेट की बुद्धि चकराये, चाहे परम होशियार पहरेदार गाभन बन्दूक कन्धे पर धरे राइट–लेफ्ट किया करे, तो भी बाजार और बैरक के प्रेम को ज़रा भी आँच न आये — भेंटें आती-जाती रहें। क़ानूनी जाल तना रहे, फिर भी क़ैदी हिरन की तरह उछलते-कूदते अफ़सरों की अक्ल की खेती चर कर जुगाली किया करें। मामूली खिलाड़ी के बस का तो यह खेल नहीं। पर जहाँ, दो-चार बार सी-क्लास मिला, समझदार के सामने से कैसे का अज्ञान-अंधकार छूमन्तर।

कृष्णन-मैनन-राव-रामन्ना कम तिकड़मी तो नहीं। उन की बैरक में सदा काफ़ी का प्रबंध रहता। और आज तो विशेष प्रोग्राम —सवेरे ही इडली-साँबर तैयार। स्टोव पर पानी गर्म हो रहा था। राव स्टोव में हवा भर रहा था, सहसा रामन्ना ने संकेत किया, "इश् —अदुगो।" सामने देखा, सब कौतूहल से चमक उठे – ओह, शास्त्रीजी।

"कमर में केवल एक तौलिया लपेटे—न चप्पल, न धोती; न कुर्ता न टोपी और नाक पर काली कमानी का कोमल चश्मा—यह धार्मिक रूप।" कृष्णन ने कहा।

"असल अहिंसा और सत्यकी मूर्ति!" मैनन बोला।

"निश्चय ही इस पावन चोले में गाँधीजी ने अवतार ले लिया।"

"जीवित रहते अवतार नहीं लिया जाता, बुद्धू।" रामन्ना ने कृष्णन को मीठी फटकार बताई।

"कम्युनिस्ट है न—इसे शास्त्रों का क्या पता।" मैनेन ने व्यंग किया।

"शान्तं पापम्—शान्तं पापम्।" राव ने कानों में उँगली देकर कहा।

सब धीरे से दबी हँसी हँसे; पर तुरन्त ही सचेत हो, बिना काम भी काम में लग गये। कोई झाड़ू लगाने लगा, तो कोई दो-चार बिखरे-बिखराये चावल ही बीनने लगा। कोई बर्तनों को ही छूने-सँवारने लगा, तो कोई केले के पत्तों को ही साफ़ करने लगा। पर सभी कनखियों से मुसकराते जाते।

बाँयी हथेली पर पिसा कोयला रखे, दायें हाथकी तरजनी से दाँत मलते, चश्मे से ऊपर-नीचे झाँकते-ताकते, शास्त्रीजी उधर ही आ निकले। निकट आये तो सभी और भी गम्भीर, तन्मय और व्यस्त—जैसे उन के आगमन से सचमुच ही बिल्कुल अनजान।

"अरे बालको, सबरे-सबरे यह क्या?" शास्त्रीजी ने अपने आने की घोषणा की।

सब हड़बड़ा कर जागे। खड़े हो कर दण्डवत, नमस्ते, प्रणाम, बन्दे आदि के ढेर लगा दिये। शास्त्रीजी ने उन को आशीर्वादों से लाद दिया।

"आज तो बड़ा अनुग्रह......हँ-हँ-हँ-।" राव बोला।

"कई बार आना चाहा, पर, और यह क्या खटराग?—पुच" ज़रा एक तरफ़ हो काली पीक थूक, शास्त्रीजी ने अपने दाँतों की सफ़ाई की मुहर लगादी।

"काफ़ी बन रही है—आप की दया—हँ-हँ-हँ-आज तो आप—।" कृष्णन विनय से हाथ मलते हुए बोला।

"काफ़ी!" शास्त्रीजी को आश्चर्य हुआ।

" इडली-साँबर भी।" रामन्ना ने कहा।

" ठीक।—अरे, पानी तो।" शास्त्रीजी ने जोश में उबलते हुए पानी की ओर संकेत किया।

मैनन ने शीघ्रता से एक बर्तन में काफ़ी डाली, रामन्ना ने उस में खौलता पानी उड़ेल दिया। दूध गर्म होने रख दिया गया। मैनन और रामन्ना काफ़ी की तैयारी में वहीं बैठ गये।

" बिना इडली-साँबर खिलाये नहीं जाने देंगे।"—राव
" चाहे सत्याग्रह ही क्यों न करना पड़े।"—कृष्णन
" पगले कहीं के। अभी तो दाँत—पुच।"

" पानी का अकाल तो नहीं। कुल्ला करें, हाथ-मुँह धोयें, स्नान करें। मैनन, पानी तो ला।"—कृष्णन

मैनन ने झपट कर पानीभरी बाल्टी और एक लोटा लाकर रख दिया। रामन्ना ने उधर काफ़ी तैयार भी करली। काफ़ी छनी तो तेज़ गंध हवा की लहरों को धकेलते हुए सब की नाकों में घुस गई। शास्त्रीजी ने ज़ोर से साँस खींची और काफ़ी की गंध का मज़ा लिया।

" इडली—साँबर बिल्कुल गर्म है। ठण्डी हो गई तो क्या मज़ा रहा।" कहते हुए मैनन रामन्ना के पास आ बैठा।

" भाप निकल रही है।" रामन्ना ने जरा ढक्कन उठाया, झक-से सलोनी गंध निकली। सब की तबीयत फड़क उठी।

" बात असल यह है।" शास्त्रीजी ने अपना संकोच प्रकट किया।

" क्या?—आज्ञा करें।" राव हाथ बाँध सामने खड़ा हो गया।

" पहले बताना पड़ेगा, यह सब प्रबंध कैसे हुआ।"

" आप के चरणों में ही बैठ कर तो हमने भी शिक्षा पाई है, गुरुदेव।

इसमें मुश्किल ही क्या ! " कृष्णन बात पूरी करे कि पहले ही राव ने उसकी कमर में नोच लिया ।

" अफ़्सरों को इस की जानकारी है ? "

" क्यों न होनी चाहिये । "—राव

" मेरा मतलब—जेल-कानून के विरुद्ध कुछ भी न होना चाहिये । "

" जल में रहे, मगर से बैर—यह भी भला सम्भव है ? "

" गाँधीजी का आदेश है कि जेल-नियमों का पालन किया जाय । २५ अगस्त, १९३० के ' हरिजन ' में साफ़ लिखा है । और हम सभी गाँधीजी के सिपाही हैं । " शास्त्रीजी अब मतलब की बात पर आये ।

" इसमें क्या शक । "

" सरासर यही बात "

" काफ़ी ठण्डी हुई जा रही है । " मैनन ने बात समाप्त कर खाने बैठने का संकेत किया ।

" हाथ-पाँव धो लीजिये । " कहकर रावने उन के पैरों पर पानी गिराना शुरु भी कर दिया ।

" अरे—अरे—ठहरो—अँह । " कहते हुए शास्त्रीजी हाथ-मुँह धोकर चटाई पर बैठे । रामन्ना ने पीतल के एक गिलास में काफ़ी और मैनन ने केले के पत्ते पर चार इडली और साँबर सजा कर सामने रख दी । दो इडली तो शास्त्रीजी साँबर के साथ ही चट कर गये । तीसरी को हाथ लगाते हुए बोले, " बहुत बढ़िया—खूब । क्या कारप्पु ... । "

" कारप्पुडि ? हाँ-हाँ, रामन्ना, ला तो कारप्पुडि । " कृष्णन ने आदेश दिया ।

" इन्हें तो साँबर से ही । कारप्पुडि से और चखियेगा । " कहकर

रामन्ना ने पत्ते के एक कोने में थोड़ी-सी पिसी लाल मिर्च रख, ऊपर तिल का तेल डाल दिया।

"खूब! तुम तो बड़े कलाकार निकले।" काप्पुडि से इडली खाते हुए शास्त्रीजी ने प्रशंसा की।

"यह मिस्टर कृष्णन आई० सी० एस० की कला-कुशलता है।" कृष्णनने छाती ठोकते हुए कहा।

"मि० कृष्णन आई० सी० ऐस०।" कह शास्त्रीजी मुसकराये।

"येस सर। आनरेबल मि० कृष्णन, आई० सी० ऐस०—इण्डियन कुकिंग सरविस।" कृष्णन बोला और सब लोग खिलखिलाकर हँस दिये।

काफ़ी पीकर शास्त्रीजी ने तृप्ति की एक डकार ली—ओङ् वन्देमातरम। और खड़े हो गये।

"अरे, इतनी जल्दी? खाया ही क्या! अरे मेनन, ला न कुछ और।" राव ने कहा।

"अकर लेदु—वेण्डा। ना भाई, इतना अत्याचार मत करो। माल पराया है तो क्या, पेट तो अपना है।" शास्त्रीजी पेट पर हाथ फेरते हुए मुसकान से ही धन्यवाद-आशीर्वाद देकर बिदा हो गये।

*　　　*　　　*

शास्त्रीजी अपने कमरे में आकर चटाई पर बैठ गये। खा-पी तो आये, पर मन धुकर-पुकर करने लगा। सोचते—सी-क्लास वालों को यह सहूलियत कैसे मिल सकती है। हो भी सकता है। भगवान की माया! यदि कानून-विरुद्ध हुआ तो? गाँधीजीने साफ़ लिखा है—काँग्रेसी बंदियों को जेल कानून में रहना चाहिये। फिर भी 'हरिजन' पाठ करूँ। शायद इडली-साँबर के विषय में कोई विशेष आदेश हो। बैठे-बैठे शास्त्रीजी पुस्तकों के ढेर में 'हरिजन' की

फ़ाइल तलाश करने लगे।

"आज काफ़ी के समय कहाँ गायब रहे?" आकर वेंकटाचार्य ने पास ही बैठते हुए पूछा।

" सी-क्लास की तरफ़ निकल गया था। छोकरे सिर पड़ गये—वेही राव-कृष्णन आदि। वहीं प्रोग्राम रहा।"

" सी-क्लास में? बड़े तिकड़मी हैं छोकरे।"

" आश्चर्य किस लिये?"

" आश्चर्य न हो?—सी-क्लास में प्राइवेट प्रबंध! इडली-काफ़ी!"

" क्या जेल-कानून-विरुद्ध हैं?"

" सरासर। क्या गाँधी जी ने 'हरिजन' में आदेश नहीं दिया? आपने कमाल कर दिया।" वेंकटाचार्य व्यंग्य से मुसकराये।

" वे तो कहते थे, जेलर ने आज्ञा देदी है।"

" तो रिश्वत पिलाई होगी—और क्या?"

" रिश्वत!—हे भगवान! इडली-काफ़ी—रिश्वत।"

" उन का क्या विश्वास। मालूम नहीं, कृष्णन तो कम्युनिस्ट है।"

" कम्युनिस्ट!—गाँधी-गाँधी!" कहते हुए शास्त्रीजी ने प्रायश्चित की शैली में अपने कान छुए।

पास से डाक्टर लक्ष्मण जो जाते हुए दीखे तो वेंकटाचार्य ने पुकारा, " डाक्—डाक्टर लक्ष्मण!"

" स्नान करने चला हूँ।" वह बाहर से ही बोले।

" अरे, आइये भी। आज तो शास्त्रीजी ने कमाल कर दिया। सुबह-सुबह ही सी क्लास में इडली-काफ़ी।"

" तो इस में क्या हो गया।" अन्दर आकर डाक्टर लक्ष्मण बोले।

" जैसे कुछ हुआ ही नहीं। महात्माजी ने इस का साफ़ निषेध किया है। क्या ' हरिजन ' नहीं पढ़ा करते ? "

" तब तो सारे काफ़ी-होटल बंद कर दिये जाने चाहिए। जो काफ़ी पिये, कांग्रेस से डिसमिस। इडली-काफ़ी-बायकाट।" कह डाक्टर लक्ष्मण हँसे।

" आप तो मज़ाक करने लगे। गाँधीजी ने हम सब लोगों को आदेश दिया है कि जेल-नियम-विरुद्ध कोई भी काम न किया जाय। सी·क्लास में इडली-काफ़ी बनाना जेल कानून के विरुद्ध है। और हम सभी गाँधीजी के सिपाही हैं। " शास्त्रीजी ने अपराधी भक्त की तरह अपनी स्थिति स्पष्ट की।

" अरे तो, क्या हो गया इस में ! ख़ामख़ा आप भी। मामूली-सी बात पर। ऐसे तो चलता ही है। " डाक्टर बोले।

" जैसा खाया अन्न, वैसा बन गया मन। " वेंकटाचार्य ने समझाया।

शास्त्रीजी बालक की तरह देखते रहे।

" जैसा खाया अन्न, वैसा बन गया मन—ठीक। अब आप 'स्प्रिट' को समझें। इस का साइण्टिफ़िक प्रोसेस देखिये। हमारे पुरखे मूर्ख नहीं थे। अन्न से मन कैसे बनता है—अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से वीर्य, माँस, हड्डी, मज्जा, नाखून, गुर्दे, फेफड़े, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—एण्ड सो ऑन। यही बात है न ? " डाक्टर लक्ष्मण ने डाक्टरी लेकचर-सा दिया।

"बिल्कुल—बिल्कुल यही बात।" शास्त्रीजी ने हामी भरी।

" शुद्ध अन्न से शुद्ध रस, शुद्ध रस से शुद्ध रक्त, शुद्ध रक्त से शुद्ध वीर्य और शुद्ध वीर्य से शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध चित्त, शुद्ध अहंकार। तात्पर्य यह कि ग़ैरक़ानूनी अन्न से ग़ैरक़ानूनी रक्त, हड्डी, मज्जा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—एण्ड सो ऑन। जब अशुद्ध मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार से काता जायगा, तो शुद्ध सूत कहाँ। शुद्ध सूत नहीं, तो शुद्ध खादी क्या ! शुद्ध खादी

नहीं तो आज़ादी क्या। और आज़ादी नहीं, तो व्यर्थ है शादी और बेकार है आबादी। मैं तो गाँधीजी की शुद्ध खादी फ़्लास्फ़ी को इतना ही समझ पाया हूँ। इसी लिये महात्माजी शुद्धि पर इतना ज़ोर देते हैं।" डा० लक्ष्मण द्वारा गाँधी-दर्शन की इतनी मौलिक और विस्तृत व्याख्या सुन कर दोनों भक्तों की पुतलियाँ आनन्द से चमक उठीं।

"आपने तो गाँधीवाद की आत्मा सामने रखदी।" वेंकटाचार्य ने प्रशंसा की और शास्त्रीजी डाक्टर के अध्ययन और बुद्धि-कौशल पर मुग्ध हुए देखते रह गये।

"काफ़ी से रस बनता ही नहीं। पीना, न पीना बराबर। अशुद्ध खादी तैयार होने का सन्देह तक पैदा नहीं होता। आधा घण्टा बाद अंतड़ियाँ धोकर निकल जाती है!" डाक्टर ने बौद्धिक अवलम्ब दिया।

"सच?" आशावादी चमक से शास्त्रीजी ने पूछा।

"और क्या! बाइ दि वे, काफ़ी पीने के बाद आप कितनी बार पेशाब जा चुके?"

डाक्टर लक्ष्मण का प्रश्न सुन, शास्त्रीजी ने लजीली मुसकानसे पलकें झुकालीं और 'हरिजन' के पन्ने इधर-उधर करने लगे।

"अरे—इस में लजाना क्या?" वेंकटाचार्य ने मीठी झिड़की दी।

"हाँ-हाँ, बताएँ न—डाक्टर से क्या छिपाना। कितनी बार पेशाब गये काफ़ी के बाद?"

"यही, कोई दो-तीन बार।" शास्त्रीजी ने सात्विक भाव से लजाते हुए उत्तर लिया।

"अरे, वाह शास्त्रीजी, काफ़ी को देश-निकाला देकर, उस के नाम पर यह शोक-सभा।" डाक्टर लक्ष्मण ने हँस कर कहा और सब हँस पड़े।

थोड़ी देर बाद शास्त्रीजी फिर गम्भीर होकर बोले, "लेकिन, इडली-साँबर भी तो।"

"हाँ, यही तो मुसीबत है।" वेंकटाचार्य बोले।

"इडली-साँबर ? हाँ, खैर, कोई जिन्ता नहीं। यहाँ, मेरा एक मित्र है, हॉस्पिटल में। उस से एक दवा लेकर आता हूँ। इडली-साँबर को पानी कर देगी। न रस बनगा, न रक्त। काफ़ी की तरह निकल जायगी। शुद्ध खादी या देशकी आज़ादी पर कोई असर न होगा।" डाक्टर लक्ष्मण ने इडली-साँबर समस्या भी हल कर दी।

"अच्छा, क्या ऐसी भी दवाएँ हैं ?" शास्त्रीजी ने आश्चर्यमय प्रसन्नता प्रकट की।

"मैडिकल साइंस ने कितनी उन्नति की है, गाँधीवादी इस में ज़रा भी रुचि नहीं रखते। मेरा तो विचार है, कि गाँधीवाद विज्ञान के सहारे और भी विकासित और स्थायी होगा। जैसे इस मामले में ही। मैं अभी दवा लाया। उठिये, नहाइये-धोइये, प्रेम से पेशाब जाइये, प्रसन्न हो चर्खा चलाइये, तकली घुमाइये। मैं विश्वास दिलाता हूँ, बिल्कुल शुद्ध खादी तैयार होगी।" कह कर डाक्टर लक्ष्मण बाहर हो गये।

शास्त्रीजी धन्यवाद या आशिर्वाद के लिये वाणी उकसाते ही रह गये।

*　　　*　　　*

डाक्टर लक्ष्मण के वैज्ञानिक तर्कों से शास्त्रीजी की बुद्धि तो निरुत्तर हो गई; पर दुविधा न गई। यदि दवा का प्रभाव ही कम हुआ या इडली का छोटा-मोटा टुकड़ा ही किसी आँत में अड़ा रह गया! अशरण-शरण गाँधी को छोड़, डाक्टरी दवाओं का सहारा! गाँधीवादी तो आत्मखोजी—धर्मविश्वासी है। यदि गाँधीजी को मालूम हो गया।

सोचते-सोचते शास्त्रीजी की परम धार्मिक आत्मा काँप उठी। अन्त में उन्होंने उपवास करने का निश्चय कर लिया। अबलाओं को आँसू और गाँधी-वादियों को उपवास ही एक मात्र अवलम्ब है।

स्नान आदि कर, दीवार के सहारे बैठ, शास्त्रीजी 'हरिजन' का पाठ करने लगे। सहसा जेल में कोलाहल हो उठा। 'गाँधीजी की जय' 'मुर्दाबाद' 'बन्दे मातरम्' 'जिन्दाबाद' की आवाज़ों से जेल गूँज उठी। शास्त्रीजी ने चौकन्ने हो कर सुना, शोर बालवर्ग-बैरक में हो रहा है। वह बार-बार 'हरिजन' पढ़ने में मन लगाते, पर बराबर विघ्न पड़ता। घण्टे-डेढ़ घण्टे तक शास्त्रीजी परेशान होते रहे। करीब १२ बजे १०-१५ आदमी उन के कमरेमें प्रविष्ट हुए। सभी उत्तेजित। शास्त्रीजी 'हरिजन' हाथ में लिये हक्के-बक्के से ताकते रह गये।

"यह अत्याचार हम कभी भी नहीं सहेंगे।" भीड़ का लीडर बोला।

"इतने उत्तेजित किस लिये? आखिर बात क्या है?" शास्त्रीजी ने शांत वाणी में पूछा।

"बालकों ने भूख-हड़ताल कर दी।"

"भूख-हड़ताल कर दी?"

"छाछ माँगते हैं। आप ही बताएँ, बिना छाछ भी क्या कोई खाना खा सकता है?"

"मैं बालकों को जाकर समझाऊँगा।"

"कोई भी सुनने को तैयार नहीं—बालहट तो आप जानते ही हैं। छाछ की माँग पर अड़े हैं।"

"आप का बल पाकर बालकों की विजय हो जायगी।" उपलीडर ने बात स्पष्ट की।

"जेल-कानून में छाछ की स्वीकृति है या नहीं?" शास्त्रीजी ने अपने समर्थन के लिये आसरा खोजते हुए पूछा।

"जेल-कानून की ऐसी की तैसी।" कोई जवान रोश में चिल्लाया।

"जेल-कानून तोड़ दो। सरकार का भाण्डा फोड़ दो।" मनचले युवक चिल्ला उठे।

"यह उत्तेजना—यह क्रोध। हमारा युद्ध सत्य और अहिंसा का है। क्रोध और उत्तेजना हिंसा है। गाँधीजी ने 'हरिजन' में साफ़ लिखा है। हरे... हरे... और हम सभी गाँधी जी के सिपाही हैं!" शास्त्रीजी ने उन पर जैसे तरस-सा खाते हुए समझाया।

लीडर ने अपने साथियों की तरफ़ देखा—सब मौन।

"टी० प्रकाशम ने जेलर की निन्दा की है। कोण्डावेंकटप्पैया भूख-हड़ताल का समर्थन कर रहे हैं। पट्टाभि जेलर के इस अत्याचार को कांग्रेस के इतिहास तक में देने की धमकी दे रहे हैं।" लीडर ने विनयपूर्वक शास्त्रीजी के सामने प्रलोभन-भरे उदाहरण रखे।

"अच्छा। लेकिन 'हरिजन'?—खैर, फिर भी मैं कल 'हरिजन' की फ़ाइल देखूँगा। अगर ज़रा भी संकेत मिला..." शास्त्रीजी अविचलित धार्मिक भाव से बोले।

"छाछ बिना, बालक एक टुकड़ा भी तोड़ने को तैयार नहीं। और आगे क्या ख़तरा खड़ा हो जाय, यह कौन जाने।" दल के नेता ने शास्त्री को पिघलाना चाहा।

"यह रही 'हरिजन' की पूरी फ़ाइल। तुम्हीं इस में से गाँधीजी का आदेश तलाश करदो-अगर बालक छाछ के लिये हड़ताल करें तो क्या करना चाहिये। गाँधीजी कहीं इशारा भी कर देते। और हम सभी गाँधीजी के

सिपाही हैं।" कह कर शास्त्रीजी ने 'हरिजन' की फ़ाइल दल के नेता के सामने रखदी।

"गाँधीजी न लिखें, तो क्या। वह हमारी आवश्यकताओं को क्या समझें। वह गुजराती, हम दक्षिणी...।" कोई छोकरा बोला।

"गाँधी—गाँधी। ऐसी अशुभ बात। गाँधीजी भारत की आतमा हैं। वह जन-जन के मन-मन की बात जानते हैं। अपने लिये नहीं, वह हर भारतीय के अधिकारों के लिये लड़ रहे हैं।" शास्त्रीजी ने पेटेण्ट शांत मुद्रा में प्रवचन किया।

"तभी तो आप बालकों की ज़रा-सी माग के लिये भी इतनी आना कानी......" किसी तेज़तर्रार नौजवान ने व्यंग्य किया और चारों ओर से भीड़ ने 'शी—शी' करके उसे मौन कर दिया।

इतने में ही डाक्टर लक्ष्मण भी दवा की शीशी लिये आगये।

"भोजन किया?" डाक्टर ने चटाई पर बैठते हुए पूछा और एक नज़र भीड़ की तरफ़ भी डाली।

"इस अवस्था में भोजन कैसे कर सकता हूँ डाक्टर?"

"मामूली—सी बात पर। मैं तो कह गया था, कोई चिन्ता न करें। ऐसी घटनाए तो होती ही रहती हैं।"

"तुम इसे मामूली घटना समझते हो, डाक्टर। मुझे इस घटना से जितना आत्मिक क्लेश हुआ, मैं ही जानता हूँ। आज मैं उपवास कर रहा हूँ।" शास्त्रीजी के शब्दों में वेदना और पश्चाताप बज उठे।

"और ये लोग किस लिये?" डाक्टर ने पूछा।

"बालकों ने भूख-हड़ताल करदी।" दल के नेता ने बताया।

"सो तो मालूम ही है—पर आप चाहते क्या है?"

"इस मामले में शास्त्रीजी का समर्थन।" उपनेता संकोच से बोला।

"एक आदमी को एक घटना से इतना आघात पहुँचा, कि वह उपवास कर बैठा। न उसे अन्न भाता है, न पानी। निर्बल शरीर, ढलती अवस्था, बिना अन्न-जल रहना! एक मनुष्य, जो हम सभी के लिये परम पूज्य है, इस घटना से इतना व्यथित हुआ कि उपवास करने लगा। मैं नहीं समझता, और तुम क्या समर्थन चाहते हो। तुम और...समर्थन...समर्थन......और क्या समर्थन?" डाक्टर लक्ष्मण ने करुणाजनक वाणी में वक्तृता दी।

"क्षमा करें गुरुदेव! हमें इस उपवास का तनिक भी पता नहीं था। आर लज्जित न कीजिये, डाक्टर साहब।" नेता ने हाथ जोड़ कर कहा।

"हम स्थिति को ठीक नहीं समझे थे—गुरुदेव क्षमा कीजिये।" उपनेता बोला।

और भीड़ भावुकता में चिल्लाने लगी।

"शास्त्रीजी की जय!"—"गुरुदेव ज़िन्दाबाद!"

"महात्मा गाँधी की जय!" – "गुरुदेव शास्त्रीजीका उपवास"

नारे लगाते हुए सब लोग चले गये।

* * *

३–४ बजे तक राष्ट्रीय नारों से जेल का आकाश गूँजता रहा। कई बार शास्त्रीजी के मनमें आया, चलकर बालकों को समझादें। पर टी० प्रकाशम् और कोण्डावेंकटप्पैया ने उनका समर्थन करके अजीब उलझन पैदा कर दी इस बारे में गांधीजी को पत्र लिख कर आदेश लेना आवश्यक है।

सोचा, सबेरे जाना ही ठीक है। डाक्टर लक्ष्मण भी साथ रहेंगे। हरिजन पाठ करते, सोते-जागते रात बीत गई। सुबह ६ बजे डाक्टर लक्ष्मण भी आगये।

'हरिजन' की फ़ाइल हाथ में ले. शास्त्रीजी बालबैरक की तरफ़ जाने लगे तो जैसे घर से चलते ही छींक हुई—राव-रामन्ना-कृष्णन-मैनन आदि आ पहुँचे। देखते ही शास्त्रीजी बनावटी क्रोध में मुसकराते हुए चिल्लाये, "धूर्तों, मक्कारो, तुम शैतान के अवतारो, सबेरे-सबेरे फिर यहाँ आ धमके। आज कौन सा षड़यन्त्र...... ?"

लेकिन जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। सब ने सिर झुका हाथ जोड़ वन्दे मातरम् किया।

"बड़े शरारती हैं—आज कौन-सी शैतानी करने चले हो ?" डाक्टर लक्ष्मण ने मुसकाकर उनकी ओर देखा।

"कैसी शरारत ? कैसा षड़यंत्र ? रावने भोलेपन से कहा।

"और हम सभी गाँधीजी के सिपाही हैं।" कृष्णन बोला।

"काठ की हाँडी बार-बार नहीं चढ़ती। अब-धोखे में आने वाला नहीं। हम बाल-वर्ग की तरफ़ जा रहे हैं। डाक्टर लक्ष्मण, चलो।"

शास्त्रीजी डाक्टर लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर लेजाने लगे।

"अब जाने से क्या लाभ ?"

"क्यो—क्या हुआ ?" शास्त्रीजी ने आश्चर्य से पूछा।

"सारी माँगें मान ली गईं, गुरुदेव।"

"काफ़ी के साथ दो इडली या एक दोसा।"

"खाने के साथ छाछ भी गुरुवर।"

"माँगें मान ली गईं ?" डाक्टर ने भी आश्चर्य किया।

"जब गुरुदेव पीठ पर हों तो भला......।"

"यह तुम क्या बक रहे हो रे ?" शास्त्रीजी अविश्वास से मुसकाते बोले।

"जेलर ने सुना तो थरथर काँपने लगा।"

"यही कि बालकों के साथ शास्त्रीजी ने भी भूख-हड़ताल कर दी—पानी तक नहीं पी रहे।" कृष्णन बोला।

"टी॰ प्रकाशम् को जब मालूम हुआ तो जेलर को बुरी तरह फटकारा। समाचार पाते ही कोण्डावेंकटप्पैया भी बालकों के साथ हो गये।"

"मैंने भूख-हड़ताल ?—कभी नहीं। झूठ—सरासर झूठ। जेल-नियम विरुद्ध। सरासर जेल-क़ानून—'हरिजन' में गाँधी जी ने साफ़ लिखा है। सरासर झूठ। तुम लोग झूठे–शैतान–मक्कार।" शास्त्रीजी तुनक कर बोले।

"मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा।" डाक्टर भी उलझन में पड़ गये।

"आप को मालूम नहीं, बात यों हुई कि छाछ की माँग मनवाने के लिये बालवर्ग ने हड़ताल कर दी थी न, कल? पूज्य शास्त्रीजी ने भी उन के समर्थन में निर्जल भूख-हड़ताल कर दी। शास्त्रीजी की भूख–हड़ताल का समाचार पाते ही जेलर ने बालकों की सारी माँगें मान लीं।" कृष्णन ने बात स्पष्ट की।

"तो इस से अच्छी और क्या बात—परम प्रसन्नता।" डाक्टर ने मुसकाकर कहा।

"वाह डाक्टर, तुम भी इन की बातों में आगये। मैंने भूखहड़ताल ?—कभी नहीं! कब की? ये झूठे, धूर्त, मक्कार—इन का विश्वास!" शास्त्रीजी भला अब कब धोखा खाने लगे।

"विश्वास नहीं तो स्वयं पढ़ लीजिये। साफ़ लिखा है, दक्षिणी भारत के गाँधी शास्त्रीजी की भूख-हड़तात। त्रिचनापली जेल में अत्याचार। जेलर को मुँह की खानी पड़ी। बालवर्ग की शानदार विजय। टी प्रकाशम्, कोण्डा आदि नेताओं ने...शास्त्रीजी...निर्जल....। लीजिये, पढ़ लीजिये।" कह कृष्णनने दैनिक 'हिन्दु' शास्त्रीजी के सामने रख दिया।

शास्त्रीजी ने उत्सुकता से पत्र उठाया और शीघ्रता से १०–१५ पंक्तियाँ

पढ़ गये। फिर एकाएक ध्यान आया—दैनिक ' हिन्दु '। तुरन्त पत्र फेंक दिया और बोले, " ले जाओ, नहीं पढूँगा। छीः-छीः।"

" आपने इसे ऐसा फेंका, जैसे जलता कोयला पकड़ लिया हो। " डाक्टर ने विस्मय-भरी मुसकान से व्यंग किया।

" देखते नहीं, कौन-सा पत्र है—दैनिक ' हिन्दु। "

" तो इस से क्या ? "

" इस पत्र पर पाबंदी लगी है। जेल में आना, गैरकानूनी है। कल भी इन लोगों ने—छी-छी ! अब हमें धोखा नहीं खिला पाओगे बच्चू।" कह कर शास्त्रीजी चौकन्ना हँसी हँसे।

" तो मैं पढ़ कर सुनाये देता हूँ। " कह कर राव ने पत्र उठाया और पढ़ना शुरू किया, "त्रिचनापली, ५ नवम्बर..." शास्त्री जी ने चंचलता से कानों में उँगलियाँ देलीं और चिल्लाये—" नहीं नहीं दुष्टो। सुनना भी ग़ैरक़ानूनी है 'हिंदु' में छपी खबर भी... सुनना— अपराध। गांधीजीने हरिजन में दुष्टो... जेलकानून...। "

राव बिना ध्यान दिये बहुत ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने लगा। शास्त्रीजी उस की आवाज़ से बचने के लिये चिल्ला-चिल्ला कर गाने लगे—

वैष्णवजन तो तेने कहिये जो पीड़ पड़ाई जाणे रे।
सब जननु उपकार करे पण मण अभिमान न आणे रे।

त्रिपथगा

[अकतूबर, १९४७]

बम्बई

टेक्सी से उतर कर रूपा ऊपर जाने लगी, मन में हुआ, नीरद के कमरे में भी झाँकते चलें। देखा—अधखुले किवाड़, अंधेरा, पर वातायनों से बाहरी प्रकाश की छाया भीतर आ रही है। पास-पड़ौसी नशीली नींद में बेसुध—पूरा सन्नाटा। अन्दर झाँका, माथे पर हाथ रखे नीरद आराम कुर्सी में करवट बदल रहा है।

सहमी चाल, नियंत्रित साँस और चौकन्नी दृष्टि से रूपा भीतर आई, तो भी नीरद ने पलकें उठाकर पूछा, " कौन ? "

" एक बज रहा है — अभी तक सोये नहीं। " कह रूपा ने स्विच आन कर दिया।

" नींद नहीं आ रही है रूपा। सिर में दर्द—कई दिन से... उफ्। " रूपा की तरफ देखते हुए नीरद बोला।

" अरे!—और बताया तक नहीं। मैं अभी...। " कहते-कहते रूपा ने पर्दे गिरा दिये, चटखनी लगादी।

" यह सब क्या करने लगी ? "

" डाक्टर जो ठीक समझेगा, करेगा। " कह पास आते हुए रूपा धीरे से हंसी।

इस मधु हँसी से नीरद के मुखाकाश पर जमी सघन उदासी की घटाओं में मुसकान–तारिका की क्षीण किरण टिमटिमा गई।

"आराम से लेट जाइये–मैं सिर में तेल लगाती हूँ। ऐसी नशीली नींद आयगी।"

"कि कभी आँख ही न खुलें।"

"हिश—ऐसी बात मुँहसे...।" मीठी ताड़ना दे, रूपा मेज़ से तेल की शीशी उठा लाई। पीछे खड़ी हो उस का सिर कुर्सी पर टिकाना चाहा।

"रहने दो रूपा।" नीरद ने उस की कलाई पकड़ सामने कर लिया।

"क्यों?" कह रूपा अधिकार-वंचित-सी कुर्सी के हत्थे पर बैठ गई।

"समझ नहीं पाता, मेरे लिये यह सब क्यों करो?"

"तब तो हम से पशु ही अच्छे, जो एक–दूसरे के घाव चाट लिया करते हैं!"

"मैं तुम को कष्ट दे सकूँ, ऐसा अधिकार भी मुझे क्या?"

"मेरे सुखके अधिकारको भी तो न छीनिये।" रूपा मीठी वेदना से बोली। नीरद ने निरुत्तर हो क्षण-भर भावुक पुतलियों से उस की ओर देखा। उस की नस-नस में गुलाबी मिठास बह चली।

कल्पित सपनोंमें लिपटी वह नीरद के पीछे आ खड़ी हुई। धीरे-से उस का सिर कुर्सी की पीठ से लगा, तेल मलने लगी। नीरद ने आँखें बंद करलीं। तेल मलते-मलते वह नीरद का सिर अपनी सुकुमार उँगलियों से गुद-गुदा देती। नीरद को लगा–बसन्ती निशा, कुसुम-कानन, कदम्ब की डालों में पड़ा झूला और उस में उसे झुलाया जा रहा है। आध घण्टे में ही वह बेहोश नींद में सो गया। कुछ मिनट और रूपा धीरे-धीरे तेल मलती रही। जब देखा, नीरद बिल्कुल बेसुध, तो धीरे से पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई।

नीरद आरामकुर्सी में बेहोश, मस्तक पर खेलते काले-काले घुँघराले उलके-सुलझे बाल, कमीज के बटन खुले हुए और ऊपर नीचे उठते-गिरते गोरा-गोरा वक्ष। तन्मयता-डूबी पागल-सी रूपा प्यासी पुतलियों से अपनी कामनाओं के केन्द्र नीरद को निहारती रही—वह सोता रहा।

रूपा के सामने अमृत का सागर जैसे आकुल करवटें ले रहा हो। लहरें जैसे उछल–उछल कर जीवनकी प्यास को चूम लेना चाहती हैं। सामने नशीला प्रलोभन मचल रहा है और रूपा जैसे बरसों की तपन को वक्ष में समेटे निशेष सीमा में बंदी के समान नीरद की साँसों को छू कर गद–गद हुई जा रही है। रूपा की पलकों में कितनी कल्पना तस्वीरें झूल रही हैं। उसकी पुतलियों की चमक में नीरद का अलस रूप अँगड़ाइयाँ ले रहा है – उस की साँसों में नीरद का गदगद यौवननद जैसे बहा जा रहा है। सामने नीरद सो रहा है और रूपा चकित–सी विस्मित-सी बैठी है। आज उस के मन की आकुल वासना में कितना उत्सर्ग उमड़ पड़ा है। आज उस की सकाम कामनाओं में निरीह समर्पण समा गया है। रूपा रूप की प्यासी–वासना की दासी–आज जैसे मुग्धाके भोलेपन की सुकुमार प्रतिमा बन गई है। उसे लग रहा है—जैसे वरदान मिल गया—जन्म–जन्म की अपूर्ण अभिलाषाओं को सफल करने का अमर वरदान !

टन्न...टन्न...टन्न...। नीरद सोता रहा। रूपा अपलक नयनों से रूप-रस पान करती रही।

टन्न...टन्न...टन्न...टन्न...। नीरद सोता रहा। रूपा पास बैठी रही॥

पौने पाँच बजे नीरद ने करवट–सी ली। रूपा धीरे-से उठी, उस के बालों में शीतल अनुलेपन के समान उँगलियाँ घुमाने लगी। पाँच बजे, नीरद जागा।

" अभी बहुत रात है, सोते रहिये।" रूपा बोली।

" तुम अभी जाग रही हो रूपा।" नीरद ने सिर घुमा कर रूपाकी ओर देखा।

" सारी रात सोती ही तो रही। अभी दो मिनट हुए......।"

" आँखें तो दोपहरी-सी जल रही हैं—झूठ बोलती हो।" नीरदने कलाई पकड़, उसे अपने सामने खींच लिया। वह स्वीकृतिमय बाधा देते हुए कुर्सी के हत्थे पर आ बैठी।

" गुस्ताख़।" मुस्काकर नीरद बोला।

" गुस्ताख़ी के लिये दण्ड दीजिये।" अधझुकी पलकों में मुस्काते हुए रूपा ने कहा।

" तुम्हें—हाँ, तुम्हें दण्ड।"

नीरदने उसे अपनी ओर खींचा। वह शिथिल-समर्पण-सी नीरद के वक्ष पर ढल गई। दण्ड पाने के लिए उस के आतुर ओठ ऊपर उठे। दण्ड देने के लिए नीरद के आकुल ओठ नीचे झुके।

और दरवाजा खट-खट—" दूधवाला।"

रूपा सँभली; नीरद डाटते हुए उठा, " सोने भी तो नहीं देता। आधी रात से ही दूधवाला—दूधवाला...।"

" सरकार, साढ़े सात बज रहे हैं।" कहते हुए दूधवाला बोतल रख, चला गया।

" चाय बना दूँ?" रूपा ने सलज्ज हो पूछा।

" नौकर आता होगा।" नीरद ने अभिनव भावना से उस के कपोल छुए, ज़रा वक्ष से सटाया, वह उच्छवासित हो बाहर हो गई। ज़ीना चढ़ते हुए लगा—पिण्डलियों में गुदगुदी के तार झनझना रहे हैं।

कमरे में आ नीरद का फ़ोटो निकाला। वक्ष से लगा लिया। कस कर चूम लिया—ओह नीरद! स्वर्ग पा गई! आनन्द-कल्पना में लय हो वह पलंग पर गिर पड़ी। पलकें मूँद सपनों में भटकने लगी। थकी थी, पर नींद कहाँ। थोड़ी देर बाद खिड़की से रूपा की गोद में कुछ गिरा। हड़बड़ा कर पलकें खोलीं—"वसुंधरा।" रैपर फाड़ पढ़ने लगी।—एक गम्भीर; किन्तु मुसकाता व्यक्तित्व।

पढ़ती जाती, आँखें चमकती जातीं, ओठ रंगीन बनते जाते। कितनी ही पंक्तियाँ साकार हो रूपा के सामने खड़ी हो गईं—हमारे साहित्य का उमड़ता यौवन-नद। सघन घन-सा गम्भीर। उसने कला की जादूभरी उँगलियों से कितने ही हीरे-मोती बिखरा दिये। नीरद थके जीवन की आशा – कर्मशील का प्रोत्साहन।

नीरद का महान कलाकार प्रकाश-पिण्ड बन रूपा की आँखों के सामने चमक उठा। आँखें चौंधियाने लगीं। फिर भी उसने आँखें मल कर देखा। उसे लगा—नीरद मेरा है।

रूपा ने फिर सोचा—स्वर्ग को एक बार तो पालूँ। सुख को पागल बन आलिंगन कर लूँ। एक बार तो मूर्छना में डूब जाऊँ। ओह, तुम महान कलाकार—और मैं?...ओह मैं एक......।

रूपा उच्छ्वासों में खो गई। उस के मुँह से निकला - नहीं। और उसने कच-से जीभ काट ली।

*　　　　*　　　　*

कई दिन बाद—रात के आठ बजे।

रूपा को अपने मित्र रायसाहब के यहाँ जाना है। वह कपड़े पहन कर दर्पण के सामने आई।

झुरमुट

चाकलेटी जार्जेटकी सलवार, काली रेशमी झिलमिल चुस्त कमीज़, उरोजों पर अँगड़ाई लेते हुए, कन्धों पर पड़ी गोटेलगी चुन्नी और वक्षपर लहराती दो वेणियाँ। चमकती पुतलियों से गुनगुनाते, जाग्रत कवि के समान, हाथ में कंघा ले रूपा अपने केश-काव्य को प्रतिभा का अंतिम स्पर्श देने लगी। किन्हीं उच्छृंखल लटों को दबाया, किन्हीं दबी लटों को उठाया। उन्हें देखने के लिये दर्पण की तरफ़ झुकी तो सहसा कम्पित हो दो गदरे गर्वीले यौवन-फल झाँक गये। रेशमी कमीज सिहर उठी। मुसकरा कर सीधे खड़े हो, अपने रूप को देखा—मोहित हो गई।

उच्छ्वास लिपटे शब्द निकले—नीरद, ओह नीरद।

फिर दर्पण में अपना रूप देखा, मुसकाई, उदास हो गई। उच्छवसित सा सुन पड़ा—नीरद यदि आज तुम...ओह ! राय साहब ? —नहीं। जीवन का स्वर्ग ! और एक निश्वास ले रूपा काउच पर गिर पड़ी।

कुछ क्षणों में ही शीतल समीर ने सुकुमार थपकियाँ दे उसे सपनों की गोद में बेसुध कर दिया। तन निश्चल और मन और भी जाग्रत—चंचल। मन की आँखें स्वप्न-मेले में भटक गईं। फ़िल्म की तीव्रता से कितने ही विचार दौड़ने लगे—मन का विश्राम, तन-तपन का उपचार नीरद। क्या हो सकेगा ? सम्मुख लहराता अमृत-सागर, उमड़ती मदिरा की पागल लहरें और मैं चिर प्यासी। क्या डूब जाऊँ ?—ओह, नीरद, तुम ? यह न होगा। यह न चाहो। अच्छे , नीरद, हाथ जोड़ूँ, यह न चाहो। तुम्हें खादूँगी। दिल पर पत्थर रख लूँगी। नीरद—नीरद—आह !

रूपा बड़बड़ाते हुए उठ बैठी—पसीने में तर। इधर-उधर देखा। अपने को पहचाना। चकित-सी, दर्पण के सामने आई। अपना रूप देखा। उरोजों पर चढ़ी कमीज़ को नीचे सरकाया। दाँई वेणी को कमर पर

फेका। फिर अपना रूप देखा और असफलता की साँस छोड़ते हुए बोली—अगर एक बार। लेकिन राय बहादुर? जीवन पाकर भी न पाया—स्वर्ग पाकर भी लुटा दिया। यह न होगा—कभी नहीं।

खट-खट—रूपा ने सकपका कर किवाड़ खोल दिये।

"आ सकता हूँ?"

"नहीं।"

वह हतप्रभ हो लौट पड़ा। रूपा ने शीघ्रता से कलाई पकड़ अन्दर खींच लिया और खिलखिला पड़ी।

'चटखट'—चटखनी लगा दी गई।

उस ने लजीली मुसकान से रूपा के बाँये कंधे पर हाथ रखा, रूपा उसे स्वाभाविक ढंग से बचा गई! संकेत से उसे पलंग पर बैठा, आप सामने कुर्सी पर बैठ गई।—स्वभाव-विरुद्ध।

स्वच्छन्द हँसी और लजीली मुसकान व्यावहारिकता के धुँधलेपनमें डूब गई।

"कैसे होते जारहे हैं—न तेल, न कंघा और शेव भी नहीं किया। यह भी क्या लापरवाही।" रूपाने मीठी ताड़ना-सी दी।

"किसी काम में मन नहीं लगता। उफ़—कितना थक गया। बहुत परेशान हूँ रूपा।" उस की साँसों में बेचैनी बज उठी।

"उठिये हाथ-मुँह धोइये। थोड़ी चाय पीजिये। थकान उतर जायगी।" कहते-कहते रूपा ने स्टोव का होल्डर प्लग में लगा, केटली रख, स्विच आन कर दिया।

जब तक उसने हाथ-मुँह धोया, चाय तैयार। छोटी मेज सरका, ट्रे उस पर रख, रूपा बोली, "पीलीजिये, नहीं तो ठण्डी हो जायगी।"

" तुम् नहीं पियोगी ? "

" मैंने अभी-अभी—। "

" नहीं पियोगी ? " ओठों से लगाने से पहले ही प्याला मेज़ पर रख वह पलंग से उठ गया।

उस की रूखी आँखें देख, रूपा काँप उठी - जैसे नया विद्यार्थी नकल करते पकड़ा जाय।

" जाने लगे ? तुम्हें मेरी कसम... । " रूपा की वाणी बेचैन होगई।

" तुम्हें कष्ट दिया—क्षमा करना। "

" तुम्हें मेरी कसम—चाय पिओ। यहीं आराम भी। " कह रूपा ने रास्ता रोक लिया। वह भावुकता में बह गई। उस की उदासीनता उसके हृदयमें नश्तर-सी चुभने लगी।

वह खड़े-खड़े ही एक साँस में चाय पी गया।

" आराम करें। " कह रूपा ने उसे पलंग पर बैठा दिया..

" उफ ! " —एक आहत उच्छ्वास उसके ओठों से निकला। वह थका-सा तकिये पर अधलेटा हो छत की ओर ताकने लगा।

" आज कैसे हो रहे हो—आराम से लेट जाओ। "

उस ने कातरता-भरी निराशा से रूपा की ओर देखा। वह व्यथित हो गई।

" तबीयत कैसी है ? " रूपाने फिर पूछा।

" मन बहुत बेचैन है रूपा। घायल मन को तुम्हारा शीतल स्पर्ष भी प्राप्त नहीं। आज तुम इतनी बदल गई। ओह...तुम भी इतनी दूर —। "

रूपा के संकल्प की नींव उस के उच्छ्वास की बारूद से उड़ गई। वह खड़ी रही ; पर जैसे बवण्डर मे चपेटे खाते हुए-सी।

"मुझ से इतनी घृणा—ओह।"

उस के ओठों से निकला तीर रूपा के मर्म पर जा बैठा।

"मैं तुम से घृणा करूँगी नीरद।" कह, रूपा बेताबी से नीरद के पास आ बैठी।

"पास होते हुए भी हम इतनी दूर ! आह—रूपा।

"मुझे माफ़ करदो नीरद। मेरा रोम-रोम भी तुम्हारे...।" रूपा बेचैनी से नीरद के वक्ष से लिपट गई।

भावुकता की बाढ़ में संकल्प-संयम रेत की दीवार की तरह बह गये। कम्पन बढ़ती गई। वह अपने को भूल गई। और भी कस कर नीरद के हृदय से सट गई। नीरद ने अपना बायाँ हाथ उस की कमर पर रख दिया;

"रूठ तो नहीं गये?" रूपा ने अनुनय-आशंका की।

"पगली।"—और कस कर एक आलिंगन।

"आह — नीरद।"— रूपा प्रेम-वेदना से चीख उठी।

आकुलता तिलमिला उठी। उच्छ्वास तेज हो गये। बेसुधी बढ़ गई। रूपा नीरद के वक्ष पर शिथिल हो गई—सम्पूर्ण समर्पण।

नीरद अपने को भूल गया—नस-नस में मदिरा उमड़ चली।

रूपा अपने को भूल गई—मूर्छना में डूबने-उतराने लगी।

रूपा का संकल्प, नीरद के गर्म आलिंगन को छूकर नवनीत की तरह पिघल गया। उसका संयम निराधार आँसू सा ढुलक गया। रूपा को लगा जैसे नस-नस में सितार के तार बज रहे हैं। रोम-रोम में गुदगदी-सी हो रही है। नाड़ियों में आकुल वासना हाहाकार कर रही है। पुतलियों में कातरता तड़प उठी। साँसों में घबराई-कम्पन झनझना उठी। रूपा बेताब-सी रस-मानस में डूब गई। सुख को चिर तृषित-सी भुज-पाशमें बाँध रखने के लिये

छटपटा गई। नीरद की उत्तेजना बढ़ती गई। वह रूपा को कस-कस लेता। रूपा का अंग-अंग जैसे ढीला हो जाता। वह आहत-सी चीख-चीख उठती।

नीरद ने उत्तेजित हो मसलकर उसे पलंग पर लुढ़का दिया। आह! विह्वल-सी वह सँभल कर उठने लगी तो दर्पण में अपना रूप दीख गया। मुसी कमीज़, अस्तव्यस्त केश, बाँई तरफ बेताब धड़कन। सँभल कर खड़ी होगई। सिहरन की एक तेज लहर उस के शरीरमें दौड़ गई। नीरद ने फिर उसे भुज-पाश में कसना चाहा। रूपा ने कैदी की-सी बेबसी से कहा, "ना, अच्छे नीरद —ना।" और मछली-सी भुजपाश से निकल दर्पण के पास खड़ी होगई।

"रूपा।"

"ना!"

"रूपा।"

"कोई है।"

खटखट — "दूधवाला!"

दूधवाला बोतल रख कर चला गया।

पराजित-सा नीरद कमरे से बाहर हो गया। और अपराधी-सी रूपा चटखनी लगा पलंग पर गिर गई।

"ओह नीरद! मैं अभागिनी—काश तुम समझ पाते...।" और वह सिसक सिसक कर रो पड़ी।

* * *

नीरद अन्तर्दाह में छटपटाते, असफल शिकारी-सा थका हारा पलंग पर गिर पड़ा। तिलमिला उठा —जैसे घाव में बिच्छू ने डंक मार दिया। तन जलता अंगारा, मन तूफानी बियाबान और आँखें विरस रेगिस्तान। कभी आत्मग्लानि, कभी पराजित जीवन की तड़प, कभी रूपा की छलना, उस की

पुतलियों के सामने अग्नि-शिखा सी काँप-काँप जाती। परेशानी में जलते-जलते उस के मस्तक की नसें तक उभर आईं—सिर में तेज़ दर्द होने लगा।

रूपा आ गई। नीरदने मुरझाई पलकें उठा, देखा—उजड़ा रूप, बिगड़े बिखरे केश, पीला मुरझाया शरीर, छालों जैसी लाल-लाल सूजी हुई आँखें। वह पास ही पलंग पर बैठ गई। नीरद तकिये के सहारे अधलेटे हो उसके अपराधी पीले पीले मुँह को देखने लगा।

"नीरद।" उमड़ती हुई नदी-सी रूपा बोली और एक शब्द में ही उस की समस्त अनुनय, कातरता और बेबसी छटपटा उठी। नीरद निर्भाव नयनों से देखता रह गया। रूपा की पुतलियों की लाल तह में नमी छा गई।

"नीरद!" रूपा ने फिर रुआसी होकर कहा।

"क्या है रूपा?" नीरद ने परायेपन से पूछा।

"रूपा को माफ़ कर दो नीरद—अपनी रूपा को।"

"मेरी रूपा!—आश्चर्य!"

"यह तन, यह मन, यह जीवन—सब तुम्हारा है नीरद। जीवन का हर विकल पल, तन का हर उत्सुक रोमांच, हृदय की हर आकुल धड़कन—सब तुम्हारा है नीरद। ओह, अगर तुम समझ पाते!"

"सब कुछ मेरा है—मैं उसे छू तक नहीं सकता। इस घायल जीवन, आहत मन, बेचैन हृदय के लिये तुम्हारे पास प्यार-भरा स्पर्श भी नहीं। तुम्हारे रस-सिंधु में मेरे लिये एक बूँद भी नहीं।" नीरद की उदासीनता भावुकता में भीग गई।

"हाँ तुम्हारा है—सब कुछ तुम्हारा है। पर नीरद, निर्मम नीरद, मेरी व्यथा को—मेरी जलन को—कुछ तो समझो। मैं एक...।" रूपा आवेश में कहते-कहते रुक गई।

"प्रेम लूट नहीं—भिक्षा भी नहीं, यह तो समर्पण है। मैं इस उत्सर्ग का अधिकारी नहीं, इस अनधिकार-कामना के लिये लज्जित हूँ रूपा।"

"प्रेम लूट भी है, भिक्षा भी, आत्मसमर्पण भी, सब कुछ है—प्रेम सब कुछ है। तुम्हें लूट का भी अधिकार है। तुम इस रूप-भोग के स्वामी हो। तुम्हारा संकेत ही मेरी इच्छा है, तुम्हारी इच्छा ही मेरा आत्मदान। तुम्हें सब अधिकार है नीरद। मेरे मन के, तन के, चिन्तन के, जीवन के—इस के परे भी अनन्त जीवन के—तुम मालिक हो! पर यह न चाहो—यह न चाहो नीरद......अगर मैं यह स्वर्ग पा सकती! मैं.........मैं एक......।" कहते-कहते रूपा की आँखें भीग गईं। उस के चम्पई गालों पर दो खारी धाराएँ बह चलीं।

नीरद कुछ न समझा, पर रूपा की व्यथा ने उसे विचलित कर दिया। उसने बायाँ हाथ उस के कंधे पर रख, उस की बेचैनी पढ़नी चाही।

"क्यों रूपा?—यह सब क्यों? मेरे लिये चारों ओर बंधन-सब तरफ़ निषेध-आदेश—दम घोटने वाली संकुचित सीमाएँ, फिर भी सब-कुछ मेरा। यह पाखण्ड-विश्वास कैसा रूपा?"

"यह न होगा। प्राण देदूँगी—यह न होगा। यह न चाहो-मुझे मत छुओ, नीरद मुझे—।" रूपा सिसक पड़ी और नीरद से एक तरफ हट गई।

"इतना क्यों खिच रही हो रूपा?" कह नीरद ने उसे अपने वक्ष के पास खींच लिया।

"ना—मुझे मत छुओ, नीरद। मेरे जीवन की काली रात में मत झाँको। कीड़े लगे पृष्ठों को मत उलटो। मैं—मैं एक पेशेवर—रूप के दाम उठाने वाली।"—रूपा सिसक-सिसक कर रोने लगी।

"तो क्या इसी से मेरे प्रेम का अधिकार छिन गया रूपा?"

रूपा अब भी रो रही थी। नीरद ने उस के गालों पर बहे आसूँ पोंछ कर फिर कहा, "तो क्या इसी से मेरा अधिकार...?"

"नहीं, नीरद नहीं। मैं एक पेशेवर औरत ओह .।"

"क्या डाक्टर अपने बच्चे को दवा नहीं देता? स्तनों का दूध बेचने वाली धाय भूख से तिलमिलाते अपने बालक को दूध नहीं पिलाती? क्या पेशा करने से ही उन के स्वाभाविक अधिकार छिन जाते हैं रूपा?"

"तुम मुझ से घृणा नहीं करते?" रूपा की भीगी आँखों में हल्की सी आशा चमक उठी।

"किस लिये?"

"सच?"

"झूठ क्यों?"

"तो भी यह न होगा। नीरद—अच्छे नीरद!"

"तब तो हम से पशु ही अच्छे हैं, जो एक-दूसरे के घाव चाट लिया करते हैं।"

"लेकिन यदि विषैली जीभ से चाटा जाय।"

"अगर कोई अमृत को भी विष समझले।"

"ना—यह विष न पीने दूँगी। प्राण जल रहे हैं। स्वर्ग मिल कर भी छिन गया। मैं अभागिनी—तुम्हारी रूपा—ओह—नीरद! आह, तुम से कैसे कहूँ – मेरा आत्मदाह! हृदय में उमड़ता हुआ गरल-प्रवाह!—" कहते-कहते रूपा की साँस तेज़ होगई। धड़कन तड़प उठी। फिर पुतलियाँ भीग गईं।

"रूपा।" नीरदने संवेदनाशील स्वर में कहा। रूपाने डबडबाई कातर पलकें उठा, नीरद की ओर देखा और फिर पलकें गिरालीं।

"रूपा–मेरी रूपा।" नीरद फिर बेचैन वाणीमें बोला।

" नीरद । " कह रूपा फिर आँसुओं में बह चली ।

नीरद ने उस के उमड़ते आँसू पोंछ, उसे हृदय से लगा लिया ।

" क्या है रूपा, मुझसे इतना दुराव क्यों ? क्या मैं तुम्हारा कोई नहीं ?" नीरद प्यार डूबी वाणीमें बोला ।

" अपने हाथ से अपना कलेजा कैसे चीर दूँ ? रिसता हुआ घाव... कैसे...ओह नीरद . मुझे...।" रूपा फिर कहते-कहते रुक गई ।

" मुझे इतना गैर मत समझो रूपा । "

" आह-कहना ही पड़ा । तुम्हें इस जहर का दाग न लगने दूँगी । मुझे ज़हरीले रोग हैं—बाज़ारू रोग । आह-नीरद ।" रूपा चीख पड़ी और उसने अपना मुँह नीरद की गोद में छिपा लिया ।

" रूपा—मेरी रूपा । " नीरद के ओठों से विथा-भरे शब्द बिखर पड़े और उसने कस कर रूपा को वक्षसे चिपटा लिया ।

★

कहानी की थीम

[नवम्बर १९४७]

बम्बई

कलाकार नीरेन, सोफ़ा में पड़े, दायाँ कपोल हथेली पर टिकाये, कहानी की थीम सोच रहा था। कलम-कागज़ सामने छोटी मेज़ पर पड़े थे। बहुत देर तक कल्पना की नोक से दिमाग़ कुरेदता रहा; पर क़लम की नोक में ज़रा भी उत्तेजना न हुई। सिर भी बोझल-सा होने लगा—नसें पिराने लगीं। कलाकार है—कहानी लिखनी है अवश्य। थीम तलाश करने के लिये बार-बार ज़ोर मारता रहा; पर थीम तो क्या, थीमकी दुम भी पकड़ में न आ सकी। नीरेन कुछ झुँझलाया—हुँ। लेकिन फिर जरा मुसकाया। मन को समझाया—तबीयत बिगाड़ी तो मूड बिगड़ा। मूड बिगड़ा, तो प्रतिभा डावाँडोल हुई, प्रतिभा पथ-भ्रष्ट हुई तो थीम गई और थीम नहीं तो कहानी क्या! नीरेन ने मन को ठिकाने किया।

बहुत देर तक प्रसन्न मन, हलके चित्तसे नीरेन पड़ा रहा। सहसा स्फूर्ति आई--सिरमें सनसनी हुई, हृदयमें गुदगुदी हुई। नीरेन फड़क उठा—ओह–ब्युटिफुल! कलम-कागज उठा, चंचल उँगलियों से लिख डाला-- वह आँसुओं और मुसकान की फुलवारी। अनंत आकुल चुम्बनों का आसरा। कवि कल्पना की कनी—नीरजा सुकुमार पर्यंक में पड़ी–सोहाग-निशा में भी सब ओर सूना-सूना। लगा, जैसे उच्छ्वास और निश्वास की खींच-तान में विवश।

और...हाँ, आगे क्या ?–अंधकार ही अंधकार ......वह अकेली एक लहर-सी इस अनन्त सागरमें...रात तो चाँदी-सी जगमग पर अंधकार ही अंधकार —दुर्निवार अंधकार।

लिख कर क्षणभर प्रसन्न पुतलियों से कागज पर देखा। फिर लिखा—नीरजा चकित मृगी-सी और बीहड़ बन, बियाबान–रेगिस्तान...। लिख कर थोड़ी देर ठहरा। सोचने लगा—कुछ बन नहीं पड़ा। आगे क्या ? फिर कुछ लिखा और काटा। फिर एक–दो शब्द लिखे और काट दिये। मन में झल्लाया —क्या हो गया। कलम चलती ही नहीं। साले निबें बनाते हैं या—यनी अभी पन्द्रह दिन भी तो नहीं हुए। पार्कर साहब के यह हाल। लूट पड़ रही है—चोर कहीं के। जी में तो आता है—कि...खैर।

झल्ला कर कागज़-कलम मेज़ पर पटक दिये। कुछ देर मनमें झल्लाता रहा—भिनभिनाता रहा। फिर सोचा, क्रोध किया तो मूड बिगड़ा। मूड बिगड़ा तो गई थीम। थक भी तो गया—–कहानी भी आगे चले तो कैसे।

नीरेन उठा। मन ठण्डा और चित्त ठिकाने करने के लिये दो-तीन सन्तरे फाड़ डाले। एक-एक खाँप चूसते हुए कहानी का प्लाट सोचने लगा। दोनों सन्तरों की हत्या सम्पूर्ण कर, तबीयत ठिकाने आई। तुले हुए हाथों से कागज-कलम उठा, फिर लिखने की ठानी। सम्बंध जोड़ने के लिये पिछला लिखा हुआ पढ़ना शुरु किया। मुँह बिगाड़ स्वयं ही आलोचना कर डाली, ‘ क्या खूब आँसू और मुसकान की फुलवारी—वाह रे फुलवारी। रेशमी कपड़ों की अलमारी। अंधकार-अंधकार बस अंधकार। वाहव्वा। वाहव्वा-मिया अंधकार प्रसाद। सोहाग–निशा में भी उच्छ्वास–निश्वास–और इतना ही क्यों ?—वेदना का विश्वास, प्रेम का अभ्यास, कामना का कम्पास। क्या खूब अनुप्रास ही अनुप्रास—छिः–हिश। यह भी कोई कहानी हुई। और लिखा-लिखाया

काट-कूट कर फेंक दिया।

चाकलेट का एक टुकड़ा मुँह में डाल, विगड़ा ज़ायका वनाने लगा। पूरा पैकेट साफ़ करके, कहीं ज़ायका ठीक हुआ। गुनगुनाते, पीपरमेण्ट की टिकिया चूसते, कहानी के मूड में थीम सोच रहा था, धीरे से किवाड़ खुले, चौंका, कौन? सत्यानाश! थीम आकर भी गायब। देखा, नौकरानी की लड़की घुटनियों रेंगती हुई दरवाजे के भीतर तक आगई। कमरे में उदासी से झाँक, वह फिर वाहर चली गई। नीरेन फिर दिमाग की सूखी नदी में कोशिश का जाल डाल, थीम की मछली पकड़ने लगा।

इस बच्ची की माँ नीरेन के यहाँ बर्तन-भाण्डे का काम करती है। रोज लड़की को छोड़, यहीं से दूसरी जगह काम पर चली जाती है। दो-तीन बजे तक लड़की कूड़े-कचरे में खेलती रहती, बाद में भूख सताती तो माँ की तलाश पड़ती। सुबह-शाम माँको काम करते वह इसी कमरे में खोज लिया करती। पर इस समय उस की माँ यहाँ नहीं। भूखी बच्ची कभी अपने कमरे में आती कभी नीरेन के कमरे में।

नीरेन पलकें मूँदे कहानी का प्लाट तलाश कर रहा था। किवाड़ जरा खटके, बच्ची ने अंदर झाँका—बिल्कुल मुरझाई, पीली-पीली रक्तहीन, चिर रोगी जैसी। आँखों में निराशा और नमी, ओठोंपर सूखी पपड़ी और पटका हुआ पेट। नीरेनने उसके मुँह पर सघन दृष्टि डाली, वह रुआसी-सी हो रही थी। बच्ची घबराई और व्याकुल-सी फिर बाहर चली गई। नीरेन चमक उठा। मिल गई-थीम मिल गई। तुरन्त कागज-कलम उठा, रूप-रेखा खींच डाली।

"सैरको नहीं चलोगे?" मुँह चलाते हुए रॉबिन भीतर आया। नीरेन फड़क कर बोला, "यार गड़बड़ मत कर। इस वक्त—थीम। नाइस स्टोरी।"

"अरे क्या थीम-थीम—ले खा न?" उस ने पुटैटो-चिप्स का पैकेट

नीरेन की तरफ़ बढ़ाया।

" बढ़िया कहानी—शानदार। आउट लाइन तैयार—मार्व्हलस। मूड खराब मत कर यार।"

" तो सुना फिर—।"

" एक निर्धन औरत [मेरे यहाँ, वही बाई, देखी है न ?] गरीबी के कारण अपनी दुधमुँही बच्ची को भूख से तिलमिलाते छोड़कर काम पर जाती है। निरीह बेज़बान बच्ची – दूध पीने का भी अधिकार छिन गया— माँ की याद में बच्ची की तड़प – मालिक उस दिन ओव्हर वर्क लेता है— बच्ची भूख से बेताब हो छटपटाती – माँ को नहीं पाती। बार-बार सूखी पुतलियों से—। वह बच्ची तूने देखी हैं न ? कितनी भोली और मासूम। ओह कितनी वेदना .....। " नीरेन ने रूप-रेखा सुनादी।

" लेकिन यहाँ तक तो कहानी शुरू भी नहीं।"

" अभी विकास करना है। देख-देख, अरे, यह बच्ची...वह....।" नीरेन ने संकेत किया।

बच्ची फिर दरवाज़े में आई। कमरेमे झाँका। इस बार बहुत व्याकुल, भूख से बेताब। माँ को न पाकर चीख उठी। चिल्ला कर रोना शुरू किया। रॉबिन ने देखा— मुरझाया मुँह, छटपटाती सूखी आँखें, धौंकनी-सा ऊपर नीचे होता खाली पेट।

" तो हाँ, विकास आगे क्या ?"

" लड़की भूख से तड़पती है। माँ नहीं आती। कोई उसे दूध नहीं पिलाता—वह चिल्लाकर—चीख-चीख कर...। ओह.. निर्दय समाज। निर्मम मानवता। बच्ची चीख-चीख कर...बेसुध-बेजान। कैसी लगी ?"

" पर कोई घटना भी तो हो।"

" घटना क्या ?— शाम को माँ आती है। अपनी प्यारी बच्ची को नहीं पाती। पागल की तरह तलाश करती है— झपटकर देखती है—बच्ची भूख से सिसकते हुए एक कोने में—दौड़कर उठाती है—कलेजसे लगाती है। माँ की दूध पिलाने की कोशिश—लड़की का प्राणान्त। रहेगी न फाइन ट्रेजडी ? सोसायटी, गवर्नमेन्ट, गरीबी—सब पर तकड़ा सटायर।"

" हाँ, अच्छी रहेगी—अगर।"

दोनों कहानी के प्लाट पर बहस कर रहे थे और लड़की चीख-चीख कर जान दिये डालती थी। वह इतना करूण तीखा और कर्कष चीत्कार करने लगी, बातें करना भी मुश्किल। किवाड़ के सहारे शिथिल हो गई। चीत्कार किया और बहुत ही करुण मुँह बनाया। नीरेन वेदना-विह्वल-सा चिल्लाया, मारव्हलहस ! ऐक्सीलेण्ट । क्या दर्दीला पोज़ ! ओह हमारे देश की नस्ल। शीघ्रता से कैमरा उठा, फोकस ठीक करने लगा। सचित्र कहानी—माँ की याद में कोमल शिशु की वेदना। नीरेन फोकस ठीक कर रहा था। बच्ची फटी-फटी वाणी में, सूखे कण्ठ से, हृदय-वेधक चीत्कार कर रही थी। रॉबिन हाथ में पैकेट लिये मुँह चलाते हुए कभी बच्ची को देखता, कभी नीरेन को। बच्ची बेहाल थी। रॉबिन ने मुट्ठीभर चिप्स उस के सामने बखेर दिये। वह चुप होगई चिप्स की मुट्ठी भर-भर मुँह में ठूँसने लगी।

" सत्यानाश कर डाला।—कहानी बरबाद।" नीरेन चिल्लाया।

" तो मैं चला—तुम्हें तो यही खटराग ?" कह रॉबिन चला गया।

" कहानी का नाश कर गया—बेवकूफ़।—मिली-मिलाई थीम...... कमबख्त।" झुँझला कर नीरेन ने कैमरा पलंग पर फेंक मारा।

बच्ची ने क्षण-दो-क्षण चिप्स के साथ संघर्ष किया, फिर रोने लगी। नीरेन डूबा-डूबा-सा देखता रहा। बच्ची का गला बैठ चुका था—आवाज़

थक गई थी। थकान इतनी कि जोर से रो भी न सकती। नीरेन गम्भीर सा देखता रहा। बच्ची ने सिसकी ली और—एक तीखा चीत्कार।

नीरेन सोचने लगा—यह गरीबी। बच्ची तड़प-तड़प कर मरे, माँ दूध न पिला सके। कुत्ते-बिल्ली से भी अभागी यह बच्ची। माँके रहते भी बेमाबाप-अनाथ। उधर माँ के स्तनोंमें दूध छटपटाए, इधर यह बच्ची भूख से तिलमिलाए। उस ने सिसकती बच्ची को देखा। उस की मौत का दृश्य आँखों के सामने जम गया। उसे दीख पड़ा—बालिका पीली-पीली निष्प्राण। मुरझा गई। हाथ पैर ऐंठने लगे। साँस भर्रा गई। पुतलियाँ पथराईं—आँखें लौट गईं। दाँतों की भिच्ची—क्षणभर छटपटाई—समाप्त।

लड़की फिर फटी-फटी वाणी में रोई। एक निष्प्राण चीत्कार और एक तरफ ढल गई। 'ओह'।— नीरेन दौड़ा। उठा कर कलेजे से लगा लिया। हृदय से लगाये, हिलाते-डुलाते, बहलाते-दुलराते नीरेन उसे दूध पिलाने लगा। अनुभवहीन हाथ—कुछ दूध बिखरता और कुछ उसके मुँह में जाता। होश हुआ तो माँकी याद आई—जोर-जोर से रोना शुरु किया, रो-रो कर बेहाल हुई जाती। परेशान हो गोद में से निकल-निकल पड़ती।

बाई आगई—घबराई जैसे बछड़े की याद में गाय। देखा—लड़की रो-रो कर प्राण दिये डाल रही है। नीरेन उसे हाथों में लिये हिलाते-डुलाते कमरे में घूम रहा है—गन्दे कपड़े, भीगी आँखें, परेशान, करुणा में डूबा!

"हाय मालिक.. तुम...यह क्या...?" कह, बच्ची को ले, बाई क्षणभर वहीं खड़ी रही और नीरेन के पैरों के पास की भूमि भिगोती रही।

महालक्ष्मी

[दिसम्बर, १९४७]

बम्बई

कल महालक्ष्मी में, दरिद्रय-दल विनाशिनी, रजत-स्वर्ण-हासिनी, मणि-हीरक विलासिनी और खग-कुल-श्रेष्ठ श्री उल्लू-विराजिनी श्री महालक्ष्मी की वार्षिक अर्चनाकाल का अंतिम दिन है। इस महापूजा-पर्व वा पँचमासा, जिस में लक्ष्मी-पूजा के होतें हैं केवल ४०-४५ दिन, जिस ने सांसारिक माया-जाल में फँसे-फँसे गँवाया, कल तो वह भी जायगा। यह परम पावन महासंयोग फिर सात मास बाद आयगा। कौन जाने, कौन तब तक जीवित रहे, न रहे। कल सहस्रों नर-नारी महालक्ष्मी को मनाने, पूजा-भेंट चढ़ाने, भाग्य का भोग और पुण्यों का प्रसाद पाने, महालक्ष्मीके आँगन में एकत्र होंगे। कल है, वह शुभ दिन; पर आज से ही महालक्ष्मी के अदृश्य चरण अनेक मदिरालयों, होटलों, नाचघरों में रुनझुन करने लगे हैं। कल महापूजन को जाना है, महालक्ष्मी के महामंदिर – रेसकोर्स – में और आज से ही कितने चंचल हो उठे हैं, उस की पूजा के प्रतीक — स्वर्ण, सुन्दरी, सुरा।

श्री महालक्ष्मी हैं घोड़ोंकी टापों से लिपट कर दौड़ने वाली। एक वरद कर से नहीं, बीसों चंचल चरणों से वरदान बिखेरनेवाली। आज-कल भक्त पहले जैसे कमखर्च-कंजूस तो हैं नहीं, वे तो हैं महादानी परम उदारमना। सुन्दरी और सुरा के लिये पुष्कल स्वर्ण चाहिये। ममतामयी महालक्ष्मी ने

जब देखा, एक कर द्वारा दिये से इन का काम चलेगा नहीं, तो उस दयामयी देवीने अनेक चरणों से देना शुरू कर दिया। महालक्ष्मीके आँगन, रेसकोर्स में उस विश्वपालिनी के बीसों चरण घोड़ों के रूप में दौड़ते हैं।

श्री अश्वदेवजी कल अपनी वरद टापों से अनेक भक्तों के भाग्य-नक्षत्र चमका देंगे और अनेक अधभक्तों की धर्म-परीक्षा लेने के लिये, उन के भाग्यों का निर्दय टापों से रौंद डालेंगे। जो-जो घोड़े कल हजारों नर-नारियों के हास्य-रोदन का फैसला करेंगे, उनकी पवित्र चर्चा सप्ताह पहले से ही होने लगी और आज तो पन्द्रह अगस्त की तरह उस में दिलचस्पी ली जारही है। रेसबुक, कण्ट्रोल टूटने पर कपड़े की तरह, जगह-जगह बिक रही हैं। इन रेसबुकोंमें घोड़ों की विरुदावलियाँ छपी हैं। उन की वीरता, और विजय का बखान किया गया है। उन के माँ-बाप के ही नहीं, नाना-मामा, चाचा-ताऊ तक के कार्यकलाप दिये गये हैं। रेसके खिलाड़ी इन पुस्तकोंको पढ़ कर अपने भाग्यकी चिप्पी किसी भी बढ़िया घोड़ेकी दुम में चिपका सकते हैं।

जवेरभाई भी हैं महालक्ष्मी के प्राचीन पूजक—रेसके पुराने खिलाड़ी। पिछली बार चूक गये, तो महीनों मलाल रहा। इन्हीं के सब घोड़े 'विन' में आये। खेल गये होते तो वारे-न्यारे हो जाते। इस बार दो-तीन दिन पहले ही तैयार। आज तो विशेष दौड़-धूप की। अपने साथी मुनीम लखपतराय से आठ बजे रात, आने को कह साथी-सहधार्मियों से मिलने गये। मालूम तो करें कौन-सा घोड़ा किस का हॉट फेवरिट है। कौन ज्ञानी किस घोड़े के टिप करता है। उनके दिल की टोह तो लेनी चाहिये।

मुनीम लखपतराय आठ बजते-बजते जवेर भाई के उस कमरे में पहुँच गये, जिसमें वे रेस जीतने की योजनाएं बनाया करते हैं। यह कमरा है, उन की

इष्टदेवी महालक्ष्मी का ज्ञान-मंदिर। ज्ञानमंदिर में फर्श पर एक गद्दी बिछी है, जिसपर दीवार से सटी एक मसनद रखी है। मसनदके दोनों सिरों पर आमने-सामने मुँह किये दो घोड़े कढ़े हैं। दीवारमें दाहिनी ओर, खिड़की में महालक्ष्मी की मूर्ति सुशोभित और उस के दोनों हाथ पीतल के दो घोड़े रखे हैं। श्री महालक्ष्मी के सामने और घोड़ों की टापों के पास कुछ फूल भी पड़े हैं।

मुनीमजी रेस-बुकें डैस्क पर रख कागज-पेंसिल लिये घोड़ों की जन्म-पत्रियाँ-सी बनाने लगे। बर्षोंके अनुभव और कल्पना में गणित का मेल मिला रेस-विजय का लेखा-जोखा तैयार करने लगे। किसी घोड़े के विषय में सोचते-इसका बाप तो बड़ा बहादुर था, इस ने कुल का नाम डुबा दिया। तीन साल में २० दौड़ दौड़ीं, आया केवल चार में-सो भी लेस ! कभी उछल पड़ते—वाह यह है अपना हॉट फेवरिट। १५ में सात विन, चार लेस। शर्तिया आयगा-शाबाश बेटा।

मुनीमजी घोड़ों की योग्यता, उन के पूर्व रेकार्ड, वंश और अपने जोड़ घटानेके अनुसार उन्हें विन और लेस देरहे थे, जवेरभाई आगये। कमरे में प्रवेश करते ही श्री महालक्ष्मी को हाथ जोड़ शीश नवाया और घोड़ों की टापों को छू कर मस्तक से लगाया। उन्हें देखते ही मुनीमजी जीतकी पेशगी प्रसन्नता में उछलकर बोले, "श्रीमहालक्ष्मी का अनन्त अनुग्रह—बस, मैदान मार लिया।"

"अपने कौन-कौन से घोड़े आ रहे है?" पास बैठ जवेरभाई ने पूछा।

"मन चाहता है, बाई के कपड़े बेचकर भी लगादूँ।"

"फिर भी तो?"

"ट्रिपिल टोट खेल लीजिये—इस से ज्यादा और क्या?"

" आप का वचन शुभ हो।"

" कल तो दिल की निकाल लो सेठ।"

" आज इसी दौड़-धूप में रहा। मारवाड़ी के यहाँ भी गया। २० रुपये सैकड़े तक का लालच भी दिया। माना नहीं। दाँत निकोस कर रह गया।"

' क्या इस बार भी ? आपने तो हिम्मत ही तोड़ दी। यह अवसर गया, तो उम्रभर पछताना। का बरखा जब कृसी सुखानी।"

" महालक्ष्मी की कृपा चाहिये—सब कुछ हो जायगा। यह चाहें तो पलभर में मारवाड़ी की मत फेर दें। सुबह ही दौड़ा आवे।" कह जवेर भाई महालक्ष्मी से कर-जोड़ विन्ती करने लगे, " भक्तों की मर्जाद, उनकी बात का पास रखनेवाली, हे मैया, तुम से कहूँ भी क्या। तुम घट-घट-वासिनी...।"

हाथ जोड़े-जोड़े जवेर भाई ने फिर सिर झुकाया। और इतने में ही उन के बाबा की अम्मा यानी उन की पत्नी भी आ गई।

" रसोई नहीं जीमनी ? ग्यारह तो बजने लगे—आखिर कब तक रतजगा करती रहूँ ?" वह जरा रूखे स्वरमें बोली।

" तुम जीमलो न—झगड़ा किस लिये ?"

" मैं जीमूँ और तुम घोड़ों की दुम की नाप-तोल करते रहो—ऐसा भी क्या नशा।"

" महालक्ष्मी के वाहन—अश्वदेव ! ऐसा न कहो, बाई।" कह जवेर भाई ने ओठों पर उँगलियाँ रखी।

" रसोई पड़े-पड़े भले ही ठण्डी हो जाय। कोई बैठे-बैठे चाहे सूख जाय...लेकिन...।"

" खा आइये न।" मुनीमजीने कहा।

" परामठे हैं न। ले आओ, यहीं जीमलूँगा।" जवेर भाई रेसबुक

उलटते-पलटते बोले।

सेठानी पराँठे रख कर चली गई।

"हाँ, तो फिर ?" कह जेवर भाई ने पराँठे मरोड़ते हुए फिर रेस की बात-चीत शुरु की।

"कहा न, ट्रिपिल टोट खेलेंग।"

"फिर भी, आप की करामात तो देखूँ।"

"टेम्पेस्ट, थण्डरबोल्ट, चंदूलाल, कप्टेन कुक, चार्चिल-इनका तो कोई चांस है नहीं।"

"ये भी कोई घोड़े हैं—टट्टू कहीं के !" जवेर भाई उपहास की हँसी हँस कर बोले।

"तीसरी रेसमें स्टुअर्ट विन।"

"हुं—अपन भी इसी पर।"

"छठा में डरबी-प्रिंस और नवीं में माउण्टबेटन। कहिये, है न ट्रिपिल टोट—।"

"स्टुअर्ट तो है ही; पर कई खिलाड़ी तो गवालियर पर टिप लगाये बैठे हैं।"

"गवालियर ?—किस्मत फोड़नी हो जिसे, वह इस का नाम लेवे। और जौकी कौन है – गहलोट। जीतते घोड़े को हरादे।" मुनीमजीने व्यंग किया।

खाना-पीना समाप्त कर सेठानी भी आकर बैठ गई।

"गवालियर तो बेकार है, पर माउण्टबेटन पर नजर नहीं जमती—नया बछेरा है। न जाने किधर को मुँह कर दे।"

"वाह—इसका तो स्योर चानस है। देखिये न, ईगिल इसी का बाप—डरबी में तीन साल तक विन रहा। अम्मा अफरीकन क्वीन की

कितनी धूम रही। यनी आप देखलें—गैलप, वेट, हाइट। सबसे ज्यादा छरैरा फुर्तीला—प्लेस होते-होते भी विन हो जाय।" मुनीमजीने रेसबुक और अपने हिसाब की नोटबुक दिखाते हुए परम विश्वास से कहा।

"लेकिन वेट तो देखिये—। औरों से कम तो नहीं। और अगर बढ़ गया हो तो...।"

"लेकिन इस रेस में दुम भी तो कटा दी गई।" सेठानीने मज़ाक से कहा। जवेरभाई उस की मजाक़ को गम्भीरता में लेते हुए बोले, "समझदार होकर भी ऐसी बातें ? दुम में भी कोई वज़न होता है।"

"दौड़ने से पहले अगर लीद करदे तो वज़न ज़रूर कम हो जायगा—तब तो जीत ही जीत।" सेठानी हँसकर बोली। मुनीमजी भी मज़ाक पर हँसे; पर जवेर भाई गर्म होकर बोले, "सोना नहीं क्या ? ख़ामख़ा बना-बनाया काम बिगाड़ने आगई।"

"अच्छी बात—तो मैं चली। तुम अपना सिर खपाते रहो।" कह कर सेठानी चली गई।

"जौकी चव्हाण है। इस लिये और भी आशा है।" मुनीमजी ने माउण्टबेटन के लिये फिर तर्क दिया।

"जौकी क्या सिर मारेगा—इसे छोड़िये। मैंने डिक्टेटर निकाला है।" जवेर भाई बोले।

"लीजिए प्लेस में तो अपन भी इसे रखे हुए हैं। बिजली है—बिजली। पर ज़रा दिल झिझकता था।"

"तो यों रहा—तीसरी में स्टुअर्ट, छठी में डर्बीप्रिंस और नवी में डिक्टेटर।" जवेर भाई ने अंतिम निर्णय कर दिया।

"प्लेस में भी चार-पाँच घोड़े निकाल रखे हैं—वहीं अदल-बदल कर

लेंगे। —अच्छा तो।" मुनीमजी घड़ी की तरफ़ देख कर बोले।

"हाँ, तुम चलो। कल दो बजे तैयार, समझे।" जवेरभाई ने उनको छुट्टी देदी।

मुनीमजी चले गये। जवेरभाई ने कातर पलकों से महालक्ष्मी की ओर देखा। क्षणभर के बाद आँखें मूँद मसनद के सहारे कमर लगा कर बैठ गये। जीतने वाले घोड़ों की तस्वीरें उन की पलकों में दौड़ने लगीं। रेस का दृश्य पुतलियों पर रपटने लगा। सोचने लगे--जीत तो है निश्चित। तीसरी दौड़ में स्टुअर्ट, छठींमें डर्बीप्रिंस और नवींमें डिक्टेटर—ट्रिपिलटोट। लेकिन रुपये का प्रबंध? मारवाड़ी बिना कुछ ओट रखे मानेगा नहीं। केवल सात-आठ घण्टे की बात। अगर ३०० रुपये भी हों तो ५-६ हजार बन जायँ। कड़े-पोहँची भी ओट रख दिये जायँ तो......। लेकिन उन से कहूँ तो वह देने वाली नहीं। फिर भी देखूँ तो, सोती है या जागती।

जवेर भाई धीरे से उठे। पिछले कमरे में झाँका। सेठानी नींद में बेसुध। अन्दर गये। तकिये के पास चाबियाँ दीख गईं। रोमांच हो आया। विचार आया-क्यों न संदूक में से कुछ ज़ेवर निकाल लूँ। कँपकँपी आगई-चोरी। पर क्षणभर में ही मन ने कहा-चोरी क्या। सुबह मारवाड़ी के यहाँ रख, शाम को वापस ले आना! जीत तो निश्चित है। और इसमें किसी को पता भी क्या चलेगा। बुद्धि ने अवलम्ब दिया, बात तो ठीक है।

वह काँपते पगों, धड़कते हृदय, और सहमी साँसों से आगे बढ़े। चाबियाँ उठालीं। धीरेसे सन्दूक खोल, अन्दर हाथ डाल, इधर-उधर टटोला और जो आभूषण हाथ में आ गये, बाहर निकाल, ताला लगा दिया। चाबियाँ तकिये के पास रख, दबे पैरों बाहर चले आये। दिल तेज़ी से धक्धक् कर रहा था। मकान घूमता-सा लग रहा था और नसों में भय की सिहरन हो रही थी। कमरे में

आ, जवेरभाई ने महालक्ष्मी को प्रणाम किया। आभूषणों को उस के चरणों से छुआ कर मस्तक से लगाया।

* * *

रात बीती – रेस का शुभ दिन आया। जवेर भाई आठ–साढ़े आठ बजे तक-सो कर उठ गये।

नहा-धो कर श्री महालक्ष्मी की आरती उतारी। उन को नया ताज़ा हार चढ़ाया, घण्टी टुन-टुन कर ध्यान अपनी तरफ़ किया। चंदन के बुरादे में पानी मिला, उन के मस्तक पर बिन्दी लगाई। दोनों घोड़ों के माथों पर भी चंदन चढ़ाया। दो हार पहनाये। उन की टापों पर भी दो फूल रखे। टापों को छू, मस्तक से लगाया। प्रसन्न मन, जगमग पुतलियों, आशाभरी अभिलाषा और विश्वासपूर्ण कल्पना के साथ जवेर भाई ने सिर झुका, प्रणाम कर, महालक्ष्मी-पूजा का विधान समाप्त किया।

* * *

मुनीनजी को साथ लिये जवेरभाई ठीक समय पर रेस में पहुँच गये। रेस-कोर्स के चारों ओर वाली सड़क पर हज़ारों मोटरें और विक्टोरिया खड़ी हैं। हजारों आदमी भीतर न जा सकने के कारण जँगलों से उचक-उचक कर देखने का धर्म कमा रहे हैं। भीतर हजारों की भीड़। एक भाग में, दर्शन–सीढ़ियों पर और उनके चरणों में बिछे मैदान में मध्य और मजूर-वर्ग के हजारों आदमी रेस-बुक लिये उलट-पलट कर अपने-अपने घोड़ों को तलाश कर रहें हैं। सैकड़ों दर्शक कन्धों पर दूरबीन लटकाए हैं। सैकड़ों आदमी दौड़-पथ के पास जँगले के बराबर खड़े हैं। यह है सैकिण्ड क्लास।

फर्स्ट-क्लासमें दर्शकोंके लिये कुर्सियाँ हैं। यहाँ उपस्थित हैं समाजके उच्च वर्ग के मनुष्य। सेठ–साहूकार, प्रसिद्ध पत्रकार, सिनेमा-स्टार, फ़ैशनपरस्त

लेडियाँ, समाजमें ऊँचा नाम रखने वाली महिलाएँ, हिन्दु, मुसलमान, पारसी, सभी तो यहाँ सुशोभित हैं। लिप्सटिक से रँगे ओठ मुसका रहे हैं, सेण्ट लगे मशीन मर्दित घुँघराले केश लहरा रहे हैं। जॉर्जेट की साड़ियाँ सिहर रही हैं। चटकीली चोलियाँ चमक रही हैं। सैकड़ों मनीपर्स कुर्सियों के हत्थों में झूल रही हैं। मदगंध उड़ रही है। सब ओर रूप का ज्वार, जवानी का समुद्र, मस्ती का उफान। सब ओर नशीली चहल-पहल, जहाँ-तहाँ कामना की स्फूर्ति, इधरसे उधर तक चिन्ताहीन जीवन।

पहली दौड़ आरम्भ होने को हुई। घोड़ों पर चढ़े जॉकी लोग उन को थिरकन भरी चाल चलाते दर्शकों के सामने लाये। छरहरे बछेरे, लहराती पूँछें, शानदार बलखाती गर्दनें, चौकन्ने कान, नृत्य-कम्पन-भरी चालें—क्या निराली छव! क्या अनोखी धजा! क्या जादूभरी अदा! फिर क्यों न लुटादे कंजूस से कंजूस भी इस रूप पर अपनी गाँठ का सब-कुछ।

चाल दिखा कर घोड़े स्टार्टर की ओर चले गये।

यहाँ से तेजी से छूटे। हजारों दूरबीनें चंचल हो उठीं।

दौड़ते हुए घोड़े ज्यों-ज्यों पास आने लगे, शोर बढ़ता गया। वे आये, सर्र-से निकल गये। खिलाड़ी चिल्लाने लगे — नम्बर चार। गहलोट— गहलोट! लीला चिटनिस विन। इव्हान-- इव्हान! लीला देसाई-लीला देसाई। पलों में नतीजा सामने। बिजली से चालित पद्धति से लिखा हुआ प्रकट हो गया। कौन घोड़ा विन, कौन प्लेस, और कितना-कितना रुपया वे लाये। बीसों आनन्द से उछल पड़े और हज़ारों के मुखोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

दूसरी रेस भी समाप्त। तीसरी शुरु हुई। यों ही जवेर भाई ने पास बैठ एक साथी से पूछा, "किस की उम्मीद है?"

"स्टुअर्ट स्योर है।"

" अपन भी इसी पर खेल रहे हैं।"

" हुँ। और छठी में ईगिल, नवीं में डिक्टेटर।"

" ईगिल ? भूलकर भी नाम न लें। डरबीप्रिंस आयगा। नवीं में डिक्टेटर ठीक।"

उधर दौड़ शुरु भी हो गई। फिर वही जोश, उछलकूद, शाबाश। वही जीवन और वही चंचलता। इसी कोलाहल के बीच घोड़े पुतलियों से फर्रसे रपट गये। परिणाम घोषित हुआ — स्टुअर्ट विन। जवेर भाई उछल पड़े। मुनीमजी की पुतलियाँ चमक उठीं। पहला घोड़ा तो आया। दूसरा भी निश्चित और तीसरा भी अवश्य—ट्रिपिल टोट।

छठी दौड़ शुरु होने से पहले ही मुनीमजी झपटकर स्टुअर्ट के टिकट से डर्बी-प्रिंस के टिकट बदल लाये। दौड़ शुरू हुई और पहले से भी अधिक जोश के साथ। डर्बी-प्रिंस विन आया। परिणाम सामने आने पर कितनी आलोचनाएं लोगों की ज़बान पर खेल गईं।

" ईगिल भी कोई घोड़ा है—छकड़ा कहीं का।" किसी ने कहा।

" ईगिल क्या करेगा—साला, हमारा तो जॉकी ही निरा गधा है, खुल कर दौड़ने ही नहीं देता।" कोई खिलाड़ी बोला।

" और आज स्नेह प्रभा को क्या मौत आगई—कैसी खिचड़ खिचड़ कर भाग रही थी।"

" बुढ़िया तो हो गई—आखिर कब तक...।"

" अंधाधुंध खिलाते हैं—घोड़ी क्या ऐसी की तैसी करे।"

सातवीं–आठवीं दौड़ भी खत्म हो गई। नवीं दौड़ में विन आने वाले घोड़ों के विषय में कई मत थे। और इसी पर सारी विजय निर्भर थी। इस में हारे तो पिछली जीतों का कोई लाभ नहीं। इस में डिक्टेटर, मार्शल, चकोरी

के नाम लिये जा रहे थे। पिछली सीटों पर काफ़ी गर्म बहस हो रही थी। कोई तो डिक्टेटर को छकड़ा बताता और मार्शल को विन दिलाता। कोई मार्शल को गधा कहता और चकोरी को विन में रखता। कोई दोनों को लद्दू कहता और डिक्टेटर को सेहरा बाँधता।

मुनीमजी पर भी इस बहस का प्रभाव पड़ा। उन्हें भी डिक्टेटर पर आस्था कम रह गई।

" तो फिर किस के टिकट लाऊँ ? " मुनीमजी ने पूछा।

" निशंक होकर डिक्टेटर के लाईये। " जवेर भाई बोले।

" शंका हो तो सिण्डीकेट में क्यों न शरीक हो जाओ। " किसी अन्य आदमी ने सलाह दी।

" वाह — भाई ! यह अनाड़ियों जैसी बातें। " जवेर भाई ने उस का उपहास-सा किया।

" तो फिर क्या तय किया—सिण्डीकेट में...। " मनीमजी कुर्सी से खड़े होकर टिकट लाने के लिये जाने-से लगे।

" आप भी किन की बातों में आगये। "

" तो डिक्टेटर के ही। "

" हाँ। " जवेर भाई जीत के जोश और विश्वास से बोले।

मुनीमजी डिक्टेटर के टिकट ले आये।

नवीं रेस के घोड़ों को उन के जॉकी मृदु-मृदु नचाते हुए लाये। कोलाहल मच गया। मार्शल ! डिक्टेटर ! चकोरी ! सब अपने-अपने फेवरिट का नाम लेले कर उछलने लगे। जोश का समुद्र उमड़ पड़ा। घोड़े दौड़ने के लिये स्टार्टर की तरफ चले गये। दर्शक दूरबीन लगा कर देखने लगे। वे छुटे॥ दर्शक कुर्सियों से खड़े हो गये। कोई गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाता—मार्शल

मार्शल ! कोई शोर मचाता—चकोरी-चकोरी। शाबाश-बेटी चकोरी ! किसी तरफ से आवाज़ आती-डिकटेटर डिकटेटर। ब्रेवो-ब्रेवो-बकप ! शाबास !

घोड़े तेज़ी से दौड़ते हुए आँखों के पास आने लगे। कभी डिक्टेटर आगे निकलता। कभी चकोरी सब को पीछे छोड़ देती। कभी मार्शल विन की उम्मीद दिलाता। देखने वाले जोश में फटे पड़ते, पूरी आवाज़ में चिल्लाते, दूरबीन से देखते। और तीर की तरह घोड़े आँखों के सामने से निकल गये। शोर कम हो गया। सब की आँखें सामने परिणाम-सूचक खम्भों और बोर्डों पर गईं। सबने देखा—चकोरी विन। मार्शल प्लेस। चकोरी वाले उछल पड़े—शाबाश मेरी बेटी ! चन्दू लाल का नाम रख लिया।

जवेरभाई का मुँह पीला पड़ गया। मुनीमजी की पीक तक सूख गई। ढाई सौ की चपत ! जीतने वाले रुपया लेने को खिड़कियों की तरफ़ भागे। हारने वाले उतरे हुए मुँह, सूखे होठ, पसीने से तर मस्तक और पिटी-सी सूरत लेकर थके पैरों से रेस-कोर्स के बाहर होने लगे।

* * *

शाम को पाँच बजे, सेठानी को बुलावा आया। माटुंगा में, किरणभाई रमनीकभाई के यहाँ गरबा में जाने का। दूर भी नहीं, जो बहाना किया जा सके। सोचा, सेठ तो अभी दो-तीन घण्टे तक आयेंगे, तब तक घर बैठे-बैठे मक्खियाँ मारनेसे क्या लाभ। छोकरियाँ बुलावा देकर चली गईं। सेठानी ने जल्दी हाथ-मुँह धो कपड़े बदल डाले। बालों में कंघी मारी। वेणी की कुण्डली बना फूलों का गजरा लपेटा। नयनों में नुकीला काजल दिया। उमंग से भरे सेठानी ने सन्दूक खोला तो धक-से रह गई। नैकलेस और कड़े गायब ! क्षिप्रता से तमाम कपड़े बाहर निकाल डाले, काँपते हाथों से सन्दूक का कोना-कोना झाड़ डाला। कोई सुई तो है नहीं, कि इधर-उधर पड़ी रह जाय-आँखों को छल सके। फिर भी सेठानी ने एक-एक कपड़ा झाड़-झाड़ कर

एक ओर रखा, पर न नैकलेस का पता चला और न कड़ों का ही। माथे पर हाथ मार चीख पड़ी।

सारा उत्साह और आनन्द शोक और आँसुओं में बदल गया। मरी-सी हो दीवार के सहारे कमर लगा सिसकियाँ भरने लगी। सत्यानाश हो गया। तेरा नाश होवे–मरे। मैं ही रही थी, क्या बरबाद करने को? कौन मिटा आया। और मुझे क्या मौत आगई थी। नींद भी ऐसी आई। आहट तक न हुई। अब क्या कभी ये दागिने बनेंगे। सोना कितना मँहगा? और उन से क्या उम्मीद! ये भी दो अदद बाप के घर के पड़े थे। हे भगवान, मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था। उन्होंने भी चोर की आहट न सुनी। रात बारह एक तक तो जागते रहे! हाय मैं तो मर गई।

अपने बाप की याद कर, मायके के सुख की याद कर, सेठानी फूट–फूट कर रोने लगी। बीस वर्ष बीत गये, कभी एक अँगूठी भी बनवा कर नहीं दी। दो बच्चों की माँ बनी, कल तक कपड़े तक मायके से आते रहे। ससुर ने क्या कम छोड़ा था। अपने घर मकान थे—सब महालक्ष्मी खा गई। सब घोड़ों की ठोकरों से धूल बन गये। सेठानी जितना भी सोचती, उतना ही उस का हृदय बहता जाता। उस के जीवन की धुँधली छाया पुतलियों में पावस बन कर छाती जाती।

आखिर कोई कब तक रोये। रोते–रोते काफ़ी थक गई तो ओठों से असफलता और पराजित सन्तोष का उच्छ्वास निकला। आँसू पोंछ उदास हो बैठ रही। सहसा आहट-सी हुई तो देखा, पड़ोसिन बाई किवाड़ों के बीच में खड़ी है।

"अरे, चलना नहीं क्या?" उस ने कहा।

"जी ठीक नहीं, तुम चली जाओ।"

" नाच-गाने में जी बहल जायगा। देखो न, छोकरियाँ कितना कह गई हैं।"

" वह भी आते होंगे—सिगड़ी तैयार करने का वक्त भी हो चला।" सेठानीने उदास मुसकान से कहा।

वह चली गई। सेठानी उदास मन, थके तन से वहीं बैठी रही। बत्ती जलाने का समय हो गया। पर वह न उठी। बत्ती तक जलाने का उत्साह न हुआ। सात बज गये। वह अब भी न उठी और न उस कमरेमें रोशनी ही की। हारे-थके जवेर भाई आये तो देखकर भौंचक्के-से रह गये। जैसे अपनी गुरू हारमें लघु अपराध भूल चुके हों।

" लाइट भी नहीं की—आठ बज रहे हैं।" जवेर भाई ने थकी हुई वाणी में पूछा।

लेकिन सेठानी दीवारसे लगे ज्यों की त्यों ही बैठी रही, न उसने कोई उत्तर दिया और नहीं वह लाइट जलाने के लिये उठी।

" आखिर बात भी कुछ हो? थका-हारा आया, न चाय, न पानी। क्यों, हुआ क्या?" कह, जवेरभाईने स्वयं ही लाइट ऑन करदी। सेठानी की उदास और रुआसी सूरत देख सहम-से गये। हृदय धकधक कर उठा। उन की पुतलियों में उन की अपराधी तस्वीर घूम गई। फिर भी उन्हों ने अपने को सँमाला। और धीरे-से सेठानी के पास बैठ गये। क्षणभर मौन के बाद उन्हों ने अजनान-से बन कर फिर पूछा, " क्या बात है?"

" कुछ भी नहीं। मेरा दुर्भाग्य—और क्या।"

" फिर भी तो। मुँह से कुछ न कहोगी।" जवेर भाई डरते-डरते सँभलते-से बोले—अपने अपराध पर जान कर भी अनजान बनते हुए।

" रात ऐसे बेहोश होकर सोये...।" सेठानी कहते-कहते रुक गई।

" क्या हुआ ? "

" कोई कड़े और नेकलेस चुरा ले गया । "

" संदूक में ताला नहीं था ? "

" ताला था । ताला ज्यों का त्यों लगा मिला । चावियाँ भी पास पड़ी रहीं । फिर भी...।" कहते-कहते फिर सेटानी की आँखें नम हो आईं ।

" आज के दिन हमारे ऊपर सनीचर था । चारों तरफ बरबादी । उधर भी ऐसा पासा पलटा कि...।" जवेरभाई ने अपनी हारकी ओर संकेत कर, सेठानी को धीरज दिया ।

सेठानी उदास भीगी आँखें लिये वैसे ही वैठी रही । जवेर भाई का साहस न हुआ कि उससे चाय तैयार करने को कहे । जवेर भाई छिपा तो गये; लेकिन वहाँ वैठने का साहस भी उन में न रहा । सेठानी की उदास और करुण मुख-मुद्रा देख, वह अपने को अपराधी पाते और कभी-कभी इतने घवराते कि घर छोड़ कर कहीं बाहर चले जायँ; पर हार कर मित्रों के यहाँ जाकर और भी मूर्ख बनना होगा ।

हल्का होने के लिये जवेरभाई ने कपड़े उतारे । दो-चार मिनट सुस्ताये । समझ नहीं पड़ा, सेठानी को किस तरह समझायें । और इतना भी बल न था कि वह अपना अपराध बता दें । कोई चारा न देख, डिब्बा उठा, जवेरभाई सण्डास चले गये ।

सेठानी उठीं । सोचा, कबतक इस तरह बैठी रहूँ । थकेहारे आये हैं— चाय-पानी तो कुछ तैयार करूँ । जो होना था, होगया । भाग्यमें जब नहीं, तो रोने से भी क्या ।

वह उठ कर रसोईघर में अँगीठी सुलगाने जाने लगी, तो मारवाड़ी की लड़की आ गई ।

"कैसे आई बेटी ?"

"चाचीजी, पिताजीने पूछा है कि वे दागीने सेफ़ में रखदें या कल उन्हें छुड़ा लोगी ?"

"कैसे दागीने ?"

"चाचाजी कल रख आये थे न, पिताजी के पास। कह आये थे, शाम तक ले जाऊँगा। सेफ़ में चले गये तो एक महीने बाद निकलेंगे।"

"मैं समझी नहीं–कैसे दागीने ?"

"नैकलेस और कड़े।"

"नैकलेस और कड़े !"

"हाँ।"

सेठानी की आँखों के सामने तिलमिले-से उड़ने लगे। उन को दुख भी हुआ और सुख भी। पर अपने आप को भीतर ही मथते हुए वह बोली, "अभी एक दो दिन बाहर रहने दें तो अच्छा—मैं मँगा लूँगी।"

लड़की चली गई। सेठानी रसोईघर में जा अँगीठी सुलगाने लगी। और उस के ओठों से एक उच्छ्वास-सा निकल कर धूएँ में मिल गया।

चोली

[जनवरी, १९४८]

पूना

स्वाधीन भारत में पहली नुमायश—बम्बई। उद्घाटन किया राजेन्द्र बाबू ने। देखने वाले दाँत-तले उँगली देते—१५ अगस्त के बाद, डेढ़ महीने में ही, देशी कला की इतनी उन्नति।

भीड़ लगी रहती। कहीं मस्तानी जवानियाँ, कहीं बूढ़ी परेशानियाँ और किसी ओर लाजडूबी सुकुमारियाँ, किसी तरफ़ कल्पना-परियों पर आहें भरने वाले कॉलेजिएट। पंजाबी निर्वासितोंने चलती-फिरती कला-वस्तुओंमें और भी वृद्धि कर दी। मराठी-गुजराती छोकरियाँ भी चुस्त कमीज़ और सरमर सलवार पहने उन्नत-मन उरोजों पर चुन्नियाँ डाले, कमर पर वेणियाँ झुलाते, लापरवाही से मुसकराते, घूम रही थीं।

कैलास बाबू भी अपने पुराने कालेज-मित्रों के साथ नुमाइश देखने गये।

रतन ने सामने टॉयलेट-स्टाल पर कुछ लड़कियों का झुण्ड देखा तो फड़क कर बोला, "चलो न यार—जरा उधर भी"

"हिश—कैसी बातें करते हो।" कैलासजी।

"कभी तो ज़ायका बदल लिया करो।" रहमान।

"वर्धा में दो-तीन बार नीम की चटनी क्या खा आये, स्वाद ही मर गया।" रतन।

" सिवा इन बातों के और भी कुछ । छिः — नारी । "

" नारि नर्क को मूल—सियावर रामचन्द्र की जय । " कह रहमान कैलास बाबू की बाँह खींचने लगा। और उधर वे लड़कियाँ चली भी गईं।

" लो यार, कर दिया न, सारा मज़ा मिट्टी । " रतन अफ़सोस के हाथ नचाते हुए बोला ।

कैलासजी बाँह छुड़ा, एक गली की ओर भागे । और दोनों उन के पीछे । सामने भीड़ की भीड़ और हाहा-हीही । सब लोग वहाँ पहुँचे । देखा—लोग मेज़ पर लगे नम्बरों पर रुपया फेंक देते और उस नम्बर की चीज़ उन्हें मिल जाती ।

रहमान ने भी एक रुपया फेंका ।

" लगाओ न दादा । " कह रतन ने भी एक रुपया दाव पर लगाया ।

सेल्समैन ने पुकारा—तीन सौ बयासी । और एक बण्डल रहमान को पकड़ा दिया । खोल कर देखा—एक फ़ाउण्टेन पेन । - लकि ।

सेल्समैन फिर बोला, " दो सो तेरह—लकि नम्बर । "

बण्डल ले, रतन ने शीघ्रता से खोला । भीड़ ने उचक-उचक कर देखा, फुर्ती से रैपर फाड़ा—निकली एक डुगडुगी ।

" अब नचाया करो बंदर, बेटा । " कैलासजी ने कहकहा लगाया । भीड़ भी खिलखिला पड़ी । रतन बुरी तरह झेंपा ।

" ब्रह्मा के बच्चे ने हमारे भाग्य में लिखी डुगडुगी । " रतन झेंप मिटाते हुए बोला ।

" अब देखो, हमारी क़िस्मत । " कैलास बाबू ने निशाना ताक कर रुपया फेंका ।

" दोसो तरेपन । — व्हेरी लकी । जिसे भेंट करो, सदा गुन गाये । " कहते हुए सेल्समैन ने एक डिब्बा कैलास जी के हाथ में दिया ।

" क़िस्मत में आई चीज़ भेंट क्यों करें। " कह, प्रसन्न पुतलियों, कम्पित हाथों और धकधक हृदय से कैलास जी ने डिब्बा खोला। रूमाल-सा यह क्या! बाहर निकाल हवा में उड़ाया — रेशमी चोली।

" खुद ही इस्तेमाल करो दादा। " रतन चिल्लाया। " व्हेरी लॅका— व्हेरी लकी! " भीड़में से आवाजें आईं। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। औरतें भी मुँह में रूमाल दे खी-खी करने लगीं। कैलास जी लाज और क्रोध से लाल हुए जा रहे थे। झल्ला कर कहा — यह क्या?

" मेम सा'ब खुश हो जायँगी। " सेल्समैन भी स्वाद लेते हुए बोला।

" किसी को भेंट मत करना दादा। खुद ही —। " रहमान ने चिढ़ाया।

" तुम्हारा सिर। " कैलासजी ने क्रोध में चोली रहमान के ऊपर फेंकी। और तेजी से चल दिये। भीड़ बड़ी ज़ोर से फिर कहकहा लगा कर हँसी। रहमान ने दौड़ कर चोली उठाली। दोनों हँसते हुए कैलासजी के पीछे-पीछे चले आये।

" यनी यह भी कोई बात। औरतों और मर्दों के लिए अलग-अलग नम्बर होने चाहिये। " कैलास जी अब भी गर्म थे।

" राजेन्द्र बाबू को यह नहीं बताया गया, वरना वह कभी उद्घाटन न करते। " रतन गम्भीरता से बोला।

" लेकिन बुरी क्या है दादा। निहायत काम की चीज है। किसी देशभगतनी को दे दीजिये। पहन कर सीना तन जायगा। फुर्ती आयगी। सीना तान कर काम करना बल और स्वाभिमान... । " रतन ने कहा।

" तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा — गधे कहीं के। " कैलासजी ने मीठी फटकार बताई। और रतन खी-खीं करने लगा।

" आप तो दादा, बड़े ही भावुक हैं। खामखा, इस में हुआ क्या।

मामूली-मामूली बातों पर !" रहमान ने समझाया।

"तुम नहीं समझते रहमान, एक पब्लिक वर्कर को कितने फूंक-फूंक कर पैर रखने पड़ते हैं। और इस बार मैं चुनाव भी लड़ रहा हूँ। सोश-लिस्टोंसे मुकाबला। अगर कहीं यही छाप दिया कि कैलास बाबू के घर में चोली, मेरा तो मरन हो गया।"

"कोई छापे तो सही। हम छापेंगे—उन के घर में लहँगा, दुपट्टा, ओढ़नी, पेटीकोट, मिस्सी, काजल, चम्पाकली, नेकलेस, पानदान, पीकदान, औरतों का सारा सामान ! वाह, कोई मज़ाक समझ रखा है।" रतन ने जोश में ज़वाब दिया और ऐसा एक्टिंग किया कि कैलास बाबू को भी हँसी आगई।

घूम कर थके तो थे ही। एक रेस्टोरेण्ट में आ कुछ खाया-पिया। बिल चुकाने के लिये रतन पहले उठ गया। रहमान एक तरफ़ खड़ा हो दाँत कुरेदने लगा। कैलासजी ने अच्छा मौक़ा देखा। धीरे से चोली का बण्डल मेज़ के नीचे सरका, दरवाज़े के पास आ ट्रैफ़िक देखने लगे। बिल चुका, रतन और रहमान बाहर आगये। कैलासजी मन ही मन बड़े प्रसन्न—पाप कटा। अगर कोई देख लेता, कितनी बदनामी होती ! परमात्मा अपने भक्तों को समय पर अक़्ल देता है। सत्य-अहिंसा की ही विजय होती है।

साथियों में किसी को क्या मालूम कि कैलासजी ने यह भारी क़िला जीत लिया।

*　　　*　　　*

कैलासजी और रतन वोटरों की सूची देख रहे थे। रतन को फ़ाइल दिखाते हुए कैलासजी बोले, "देखो न, बीसों वोटरों के नाम ही नहीं।"

"तो, सो रहे हो क्या दादा। शुक्रवार को पिटिशन की तारीख है। सोमवार आज गया ही।"

"जब साथियों का ही यह हाल, रहमान को ही देखो, हफ्तों से सूरत तक नहीं.. ।"

"क्या बुराई कर रहे हो दादा।" मुसकराते हुए रहमान भीतर आ गया।

"अख्खे़—आप।" कैलासजी मुसकराये। रतन भी मुसकरा दिया।

"क्या बताऊँ दादा, पेटीकोट सरकार के मारे नाकोदम है। आज पासपोर्ट दिया, घर से निकलने का।" कह रहमान पास बैठ गया।

"तभी तो कहता हूँ—औरतों के चक्कर में पड़ना, मुसीबत मोल लेना है।"

"दादा, तुम भले। और क़सम खुदा की, जो यह गलती करो।"

"तेरे मुँह में कुफ्र। यह तो नहीं कहता कि एक लचकदार भाभी आजाय। चाय-पानी का तो...।" रतन मुसकाकर बोला।

"अपना ऐसा भाग्य कहाँ।"

"तो चोली किस लिये खरीदी?" रतन ने गम्भीरता से पूछा।

"निकाल दो तो १०० रुपया इनाम।"

"पहुँचादी होगी किसी सुपात्रा सुकुमारी हमारी भाभी को!" रहमान ने व्यंग्य किया।

"तुम्हारा सिर-धूर्त कहीं के।"

"तो फिर?" रतन ने पूछा।

"वह तो उसी दिन ईरानी रेस्टोरेण्ट में। तुम समझते हो, गाँधीवादी बिल्कुल बुद्धू हैं। हम भी अक्ल रखते हैं—।" कह, कैलासजी सफलता की हँसी हँसे।

"यह क्या गज़ब कर बैठे दादा।" रहमान ने गम्भीर होकर कहा।

"और क्या ! भाग्य में आई वस्तु कोई इस प्रकार फेंकता है। फ्रॉयड तक ने साफ़ लिखा है—सफलता की प्रतीक, उन्नति की लीक है चोली। नारी का रूप—भागवानी के लक्षण। चोली है तो हमजोली है। और चोली तो चोली ही...मैं तो चोली—।" रतन ने भावुक वाणी में कहा।

कैलासजी ने आँख मारी – इस्।

शैल आ गई। रतन ने पैंतरा बदला, "चोली चोल—चोलभील भी तो और चोहानों ने क्या कम......।"

"चोल-भील जायँ भाड़में–लीजिये अपनी चोली। लाइये इनाम!" शैल ने मुसका कर चोली कैलासजी की गोद में फेंकदी।

सब हक्के-बक्के रह गये।

"कैसी चो-इ। यह क्या!" कैलासजी ने विस्मय किया।

"वह तो रहमान अच्छे मिल गये, वरना...। कितनी महँगाई है। कितना परेशान होना पड़ा। वाह, कैलास बाबू, लीडर ठहरे न! होटलों में इस तरह चीजें भूली जाती हैं।"

"किसकी चोली! कैसी चोली।—क्या है रहमान?" श्री कैलासजी शैल की तरफ़ देख भौंचक्के से रहगये। रहमान बिना कुछ बोले मुँह फेर गर्दन खुजलाने लगा। रतन चोली की तह खोल गम्भीरता से बोला, "क्या सर्विस है! ईरानी होटल कितने ईमानदार हैं, क्यों दादा?"

"हाँ, यह बात तो है।" रहमान कैलासजी से नज़र चुराते हुए शरारत से मुसका कर बोला।

कैलासजी खोये–खोये–से देखते रहे।

"अच्छा, ज़रा पार्टी–वर्क के लिये जाना है, पर इनाम लिये बिना कभी न छोड़ूँगी।" कह मुसकाते हुए शैल विदा हो गई।

शैल के जाते ही कैलासजी बरस पड़े, " तुम भी अजीब मूर्ख हो। उसे क्यों बताया ? तुम्हें क्या पड़ी थी ? घर का अतापता भी दे आये। कैसे-कैसे बेवकूफ़ों से पाला पड़ा। क्या कहें, सा'ब, घर के आदमी ही जब...हम तो फूँक-फूँक कर पग रखते हैं। हमारे दोस्त ही हमें मिट्टी में मिलाना......। "

" दादा, तुम तो इतनी छोटी-छोटी बातों पर...।" रतन ने सहानुभूति से कहा।

" छोटी-छोटी बातों पर—तुम भी कम हो क्या ! क्या छार्विस है—ईरानी होतल हैं...वाह रे -बड़े आये पारखी और आप भी कहते हैं—ए बात तो ऐ। " कैलासजीने ऐसा मुँह बिगाड़ कर कहा कि दोनों को हँसी आते-आते रुक गई।

" मुझे क्या मालूम था। " रहमान ने बनावटी खेद प्रकट किया।

" मालूम भी है, यह लड़की सोशलिस्ट है। पार्टी में जाकर न जाने क्या-क्या कहे। ये लोग बिना सुई के फावड़ा बनाते हैं। "

" तो यह भी न बचेगी, दादा। सवाल उठता है, चोली इस के पास कैसे आई। कैलास बाबू से जरूर कुछ न कुछ...। " रतन ने जोश में कहा।

" इस में क्या शक। " रहमान ने समर्थन किया।

" इछमें क्या छक् !—लेकिन तुम्हें क्या पड़ी थी ? " कैलास जी फिर व्यंग्य से बोले।

" ख़ैर, जाने भी दो। हाँ, शुक्रवारको नये वोटरोंकी ओरसे अपील... दिन ज्यादा नहीं रहे। " रतनने बातचीत का सिलसिला बदला।

" क्या वोटर-फोटर—ऐसे चुनाव लड़े जाते हैं, कहीं। लोग कितना विरुद्ध प्रचार करेंगे। हमें कहीं मुँह दिखाने को......। " कैलास जी ने गम्भीर उदासी से कहा।

"कायरों-जैसी ब.तें। बात न बातका सिरपाँव। खामखा आप भी... दादा, इस बार वह नया टैक्निक चलूँ और मौलिक दाव चलाऊँ; लेकिन एक बात और दादा—" रतन ने उत्साह से कहा।

"क्या?"

"अगर यह नापसन्द है, तो दूसरी चोली खरीद दो शैल को।"

"तुम्हारा सिर शैतानो।" कह, मीठे क्रोधमें कैलाशजी ने रतन के ऊपर चोली फेंक कर मारी। रहमान और रतन खीखी कर हँस पड़े। चोली, कोने में पड़े मैले कपड़ों में जा गिरी।

* * *

शुक्रवार—सबेरे-सबेरे तीनों वोटरों की सूची देख रहे थे। कौन-कौन व्यक्ति ई-वार्डमें नागरिक अधिकारों से वंचित रह गया। स्वाधीन भारत में भी यह अन्याय। और जब कि कैलासजी चुनाव लड़ रहे हों।

रतन और रहमान को कालेज-बैंक-रोड और हापुसजी-भाई-स्ट्रीट के लोगों को साथ ले कोर्ट पहुँचने का आदेश दे, विदा किया! जल्दी-जल्दी खाना-पीना समाप्त कर कपड़े बदल, ताँगा किया और कोर्ट की तरफ भागे। ताँगे से उतर लपझप चले जा रहे थे कि गिड़गिड़ाते हुए बुड्ढा धोबी पीछे झपटा, "तुहार बाट जोहत-जोहत...सरकार...हम तो...का कहि।"

लेकिन कैलास बाबू को फुर्सत कहाँ। कोर्ट-रूम के सामने पहुँचे तो रतन ने बताया, "मि० बागची अभी आये ही नहीं।"

कैलासजी ने सन्तोष की साँस ली। धोबी भी घिसटता-सा आ पहुँचा।

"सरकार बाट जोहत-जोहत अँखियाँ पिराय गईं। हमार आबरू तुहार हाथनि...कचैरी-अदालत हम का जानी।"

"अरे, बात भी तो कह।" रतन ने सहारा दिया।

" का कहि बाबूजी, हमतो मर जाव, जो सरकार हमार परवस्ती ना करबै तौ ...।" धोबी कान्स्टेबिलको आते देख कहते-कहते रुक गया। वह पास आया तो उसे सलाम कर एक तरफ खड़ा हो गया।

" पुरानी अदालत में पहुँच लीजिये। बस, १० मिनट बाद, आप का ही केस।" कह कान्स्टेबिल चला गया। धोबी भी उस के साथ हो लिया।

" क्या बागचीकी उदालत से मामला मीर साहब के यहाँ चला गया ?" कैलासजीने आश्चर्य किया।

" समझमें नहीं आता। तुम उधर चलो, मैं यहाँ का मामला सुलझा लूँगा। तब तक रहमान भी आजाय।"

" अच्छा, मालूम तो करूँ।" कह कैलासजी विदा हो गये।

मीर साहब की अदालत पहुँचे। धोबी और कान्स्टेबिल खड़े थे। धोबी घबराया-सा हाथ जोड़, कैलास बाबू के पास आ खड़ा हुआ।

" क्या मामला ?" कैलासजी ने धीरे से पूछा।

" बस, आप का ही केस।" कांस्टेबिल बोला।

इतने में आवाज़ लगी, बुद्धा बैसाखी धोबी—कैलास नाथ लालचंद्र—देवीदयाल दीमकचंद्र—

तुरन्त बुद्धा को गवाह के कटघरे में खड़ा कर दिया गया।

मजिस्ट्रेट ने कई प्रश्न किये—कब चोरी हुई ? उस वक्त तुम कहाँ थे ? किन–किन के कपड़े धोते हो ? बुद्धाने भोले–भाले सही उत्तर दे मजिस्ट्रेट को तीन–चार सलाम झुकाए और कटघरे से बाहर होगया। अब समझे कैलासजी कि उन के कपड़े चोरी हो गये।

मीर साहब ने पुकारा—बाबू कैलास नाथ। कैलासजी मुसकान–से ही मजिस्ट्रेट का अभिवादन कर कटघरे में जा सुशोभित हुए।

" आप के कपड़े धोता है बुड्ढा ? "

" जी हाँ । "

" कोई निशान पड़ता है ? "

" K L S—के० एल० एस० । "

मजिस्ट्रेट ने संकेत किया, सिपाही कपड़े पहचवाने लगा ।

" यह आप का है ? "

" हाँ—मेरा । "

" यह आप का है ? "

" हाँ मेरा । "

" और यह—? "

" हाँ—नहीं । यह ?—यह क्या ? " कैलासजी ने हक्के-बक्के से होकर उत्तर दिया ।

" यह रेशमी चोली ? "

" यह मेरी ! मेरी—नहीं...। " कैलासजी फीके स्वर में बोले ।

" आप की नहीं ? निशान तो....। " मजिस्ट्रेट ने मुसकराते हुए पूछा । कैलासजी को चुप देख, फुर्ती से धोबी बोला, " इन की नाहीं, सरकार, इन की महरारूकी । " सब कहकहा लगा कर हँस पड़े । आर्डर—आर्डर । और मजिस्ट्रेट लंच के लिये उठ गया ।

रतन और रहमान भी आगये । कैलासजी बाहर आ धोबी पर बिगड़े, " नालायक कहाँ से आ मरा । नई मुसीबत ! न जाने किस की यह....मेरे कपड़ों में —गधा कहीं का । इन अशिक्षित जानवरों से......। "

शैल भी टिपटिप करती आगई, " अरे आप ? क्या बात है ?—क्यों रे बुड्ढे ? " उसने विस्मय से पूछा ।

" हमारा कपड़ा चोरी गये रहे, उहि मा सरकार की चोली भी...। हम तो मर जाब, जो सरकार परवस्ती ना—।" धोबी गिड़गिड़ा कर बोला।

" चोली ? मिल गई ?—बधाइयाँ कैलास बाबू।" मुसकाते हुए शैल चली गई। कैलासजी ने रूखा–सा धन्यवाद दिया।

" दादा, मुझे तो शैल की आँखों से ऐसा लगता है।" रतन बोला।

" क्या ?"

" यह तुप पै—हँ...हँ...हँ...वही बात।" कह रतन ने आँख मारी।

" रतन, मैं तेरा सिर तोड़ दूँगा।" कैलासजी बिगड़ कर बोले और सब खी–खी कर हँस दिये।

* * *

कैलासबाबू के मुक़ाबले, समाजवादी दल ने शैल को खड़ा किया। कल चुनावका दिन भी आगया। कैलास बाबू कल के मोर्चे के लिये दोस्तों से विचार-विनिमय करने के लिये बैठक में आये तो एक पोस्टर पड़ा मिला।

कैलास बाबू चर्खे के हमजोली।
बगल में कांग्रेस की झोली।
हैं तो आल इण्डिया ब्रह्मचारी जी—
पर रखते हैं घर में रेशमी चोली !

इस चोली का रहस्य क्या है ? क्या कांग्रेसी उम्मीदवार, जनताके सेवक ब्रह्मचारी कैलास बाबू बताने की कृपा करेंगे। जनता बड़ी उत्सुक है। खैर, आप इस रहस्य को नहीं भी खोलें तो भी पर्दा फ़ाश होगया। बाबा, मन की आँखें खोल। यह चोली क्या बला है ? जनता की माँग है, कैलास बाबू कैफियत दें।

पोस्टर पढ़कर कैलास बाबू भिन्ना गये। रतन और रहमान आये तो गर्म होकर बोले, " देखी, इन लोगों की नीचता। चुनाव न हुआ, कुंजड़ियों

की लड़ाई हो गई । छीः-छीः—ये unfair means!"

"पर इन स्टण्टों से वे चुनाव नहीं जीत सकते, दादा। कहो तो अक्ल ठिकाने लादूँ - शैल की शरारत। गाँधी जयन्ती पर कैलासबाबू से चोली की माँग। वह खादी की चोली भेंट करना चाहते थे—शैलने रेशमी खरीदने पर विवश किया। कहो तो, निकाल दें एक पोस्टर—?" रतन बोला।

"छोकरी को छठी का दूध याद आजायगा।" रहमान ने कहा।

"पागल तो नहीं हुए।" कैलासजीने डाटा।

थोड़ी देर तक चुनाव-सम्बंधी बातें होती रहीं। रहमान और रतन को कैलास बाबू ने चुनाव-मोर्चेकी बहुत सी मार्के की बातें बताईं। दोनों चले गये।

सोशलिस्टों के प्रचार, जनताके कौतुहल और बालकोंके खेल-तमाशेने एक दिन में ही कैलास बाबू का नाम सब की जबान पर ला रखा। कैलासजी का नाम भी चोली बाबू पड़ गया।

किसी प्रकार सोते-जागते हार-जीत की आशा-निराशा में रात बीती। सवेरा हुआ। शहर-भर में शोर का समुद्र ठाठें मारने लगा। ट्रकोंकी पौं-पौं से कान झन्ना गये। जोशीले नारों से आसमान गूँजने लगा।

तीसरे पहर तक खूब वोट पड़ते रहे। दोनों दल वालों में कस कर संघर्ष होता रहा; पर चार बजते-बजते कांग्रेस के मुहर्रम ठण्डे होने लगे। कैम्प में धूल उड़ने लगी।

पसीना टपकाते, मुरझाया मुँह और निराश दृष्टि लिये कैलास बाबू कैम्प में आये, "देख ली न आज, इस चोली की करामात। सत्यानाश कर दिया। शहर-भर में बदनामी, वोट कौन डाले। ये कल के लौंडे हाथ मार ले गये। और इस छोकरी शैल ने तो...।"

"घबराने की कोई बात नहीं दादा। आदमी हमारे भी दौड़ रहे हैं।

एक रेला आया कि काम फ़तह।" रतन ने धीरज दिया।

और इतने में रहमान भी दौड़ा आया, "दादा, आधा घण्टा रह गया—जो कुछ कर सको, कर डालो। और हाँ, एक खबर और—५०-६० वोटरों की भीड़ आ रही है, जो किसी को भी...बस आखरी...।"

इतने में कांग्रेसी ट्रक भी आ गई। ४-५ वोटर भी आये। कैलास बाबू ने वालिण्टियरों के साथ उन्हें भीतर भेज दिया। वह भीड़ भी आगई। समाजवादी दौड़े। कांग्रेसी दौड़े। छीना-झपटी होनें लगी। नारे लगने लगे। अजीब दृश्य! नया जीवन। आनोखी खींच तान। धक्कम-धक्का—रेल-पेल।

"ज़बरदस्ती क्या। हम अपने आप।" भीड़ का पंच बोला। समाजवादी चिल्लाये—मजदूरों की मदद करो। सोशलिस्टों की मदद करो। औरतों की मदद करो—नारी-जात को वोट दो। नारी जात की जै।—एक औरत को वोट दो।"

"कांग्रेस को......महात्मा गांधी ज़िन्दाबाद"

कांग्रेसी केम्प में नारे शुरु ही हुए कि बीच में सोशलिस्ट मज़ाक बनाते हुए चिल्लाए—"चोली-चर्खा ज़िन्दाबाद!"

और सब लोग चिल्लाने लगे—चोली-चर्खा जिन्दाबाद—चोली-चर्खा ज़िन्दाबाद।

और रतन ने फुर्ती से जेब में से चोली निकाली। कैलासजी भिनभिनाये। रतन चोली को हवा में उड़ाते हुए चिल्लाने लगा—चोली-चर्खा ज़िन्दाबाद! चोली को वोट दो! चोली-चर्खा जिन्दाबाद।

चोली-चर्खे का नाम पहले ही लोगों की जबान पर था। ये शब्द सब के कानों में बस थे। इसलिये भीड़ने समझा, चोली बाबू कोई बड़ा आदमी है।

भीड़ भी चिल्लाने लगी। कैलासजी भुने जारहे थे।

रतन ने नारे लगवाने शुरु किये--

" चोली—चर्खा..."

" जिन्दाबाद।"

" चोली बाबू...। "

" जिन्दाबाद। "

" चोली को..."

" वोट दो !

" वोट फार..."

" चोली ?

" वोट फार..."

" चोली ? "

" किसे वोट दोगे ? " रतन ने जोश में पूछा।

" चोली को। " भीड़ चिल्लाई।

" तो आओ मेरे साथ--। " कह रतन आगे हो लिया। भीड़ पड़-पड़ पड़-पड़ करती रतन के पीछे दौड़ गई। सोशलिस्ट समझाते हीं रह गये। लेकिन कौन सुनता है अब।

★

पागल

[मार्च, १९४८]

बम्बइ

बाज़ार-में भीड़ का क्या ठिकाना—ठट्ट के ठट्ट। शनिवार—और भी रेल-पेल और धक्कमधक्का। मोटर चलाना तो मानो मुसीबत। पौं-पौं किये जाईये, कौन सुनता है। जालंधर का मेन बाजार—जन-समूह उमड़ा चला जा रहा है। एक पागल-से युवक ने सड़क पार करनी चाही, पौं-पौं... हॉर्न बजा। वह बीच में ही ठिठक, ऊँघता-सा ताकता रह गया। फिर 'पौं-पौं...'। उसने जैसे कुछ सुना नहीं। ड्राइवर बड़बड़ाया। महिला घबराई—ब्रेक ब्रेक! धक्का लगा, वह लड़खड़ाया, और चूं-उँ उँ—खड़क! मोटर रुकी। बड़बड़ा कर ड्राइवर नीचे उतरा—जान देनी है क्या? कितनी देर से पौं-पौं...।

महिला भी धीरसे बाहर आई।

"चोट तो नहीं लगी?"

"किसी को कुचलने का लाइसेन्स भी ले लिया है क्या?" पागलों-जैसी मुसकान से युवक बोला।

युवक के व्यंग्य पर युवती को क्रोध-सा भी आया और अप्रतिभ-सी भी हुई। धीरे-से और आगे बढ़ी। पास जो आई, तो देख कर स्तम्भित! "ओह—तुम?" उस के ओठों से निकला।

युवक ने निर्भाव नयनों से उसे देखा। महिला आकस्मिक घटना की तरह

उस को ऊपर से नीचे तक देख गई। हक्की-बक्की—आश्चर्यडूबी! गुलाबी गाल चम्पई हो गये, चमकते ओठ मुरझा गये। जमी पुतलियों से उसे देखती रह गई। ड्राइवर मूर्ख-सा खड़ा रहा।

" ओह, तुम नीहार आज...।" कह युवती ने उस की कलाई पकड़ मोटर का दरवाज़ा खोल, ड्राइवर को अज्ञा दी, " पार्क लेन।"

" यह क्या?" युवक हिचकिचाते हुए बोला।

" चलिये न।" अनुरोध-वाणी में कह, उस ने उसे अन्दर खींच लिया।

मोटर घरघर घरघर दौड़ चली।

" चार वर्ष बाद आज तुम्हें देख रही हूँ—और इस अवस्था में। यह क्या सूरत बना रखी है? तुम क्या से क्या हो गये नीहार! क्या तुम ऐसे ही थे?"

" इन चार वर्षों में तुम बहुत भावुक होगई हो, लाज।" नीहार ने सूखी मुसकान से कहा।

" मैं भावुक हो गई?—चार वर्ष से तुम्हारी सूरत के लिये तरसती रही। सैकड़ों पत्र लिखे, एक का भी उत्तर नहीं। मैं भावुक हो गई? तुम्हारे पास मेरे लिये प्यार के दो शब्द भी नहीं। मैं भावुक हूँ? तुम अपना विनाश करते रहो, मैं कलेजा पत्थर कर लूँ? तुम्हारे लिये मरती रहूँ, तुम खबर तक न लो। आज मिले तो इस उजड़े रूप में।"

" एक जगह रहना नहीं होता। किसे लिखूँ, क्या लिखूँ, क्यों लिखूँ, कुछ समझ नहीं पड़ता, लाज। और फिर लिखने के लिये लिखना तो...। यहीं आया, तो यों ही...।"

" एक कार्ड नहीं डाल सकते थे? जैसे मैं तुम्हारी कुछ भी नहीं। तुम पर मेरा कोई अधिकार नहीं। मैं तुम्हें दो दिन भी अपने पास रखने लायक नहीं? आज अचानक भेंट हो गई। न मिलते तो चाहे मर भी जाऊँ।"

लाज की वाणी में करुण उपालम्भ उमड़ आया।

"पगली कहीं की। अरे, आने का निश्चय तो था नहीं। अचानक चल पड़ा—बस आवारागर्दी। पत्र डालने का अवसर ही कहाँ!" नीहार ने मुरझाई मुसकान से लाज के कंधे पर हाथ रख दिया।

"आखिर तुम्हें हो क्या गया? कीमती जीवन को बरबाद करना। मैं यह विनाश नहीं देख सकती। कालेज क्यों छोड़ दिया? रेडियो पर भी नहीं जमे। इस तरह कब तक......?" लाज ने ममतासे व्यथित हो कर कई प्रश्न कर डाले।

"क्या करूँ? क्यों करूँ? किस के लिये करूँ? जीवन में कोई आकर्षण नहीं, मन में उत्साह नहीं, तन में बल नहीं। आज यहाँ, कल वहाँ। अकेला जीवन, इस के लिये ज्यादा खटपट करना व्यर्थ।" नीहार दार्शनिक गम्भीरता से बोला।

"जानती हूँ, वह घटना तुम्हारे जीवन में गहरा घाव है—भीषण आघात है; पर वह तुम्हारी हार तो नहीं। और तुच्छ-सी हार पर भी क्या कोई इस तरह अपनी बरबादी करता है? मूल्यवान जीवन मामूली-सी बाजी पर लगाना! क्या एक वही आकर्षण थी, वही प्रेरणा थी, वही शक्ति थी? मैं कुछ भी न रही? तुम्हारे हृदय में मेरे लिये ज़रा भी स्थान नहीं—तनक भी प्यार नहीं। आज समझी। इतने कठोर कैसे हो गये तुम, नीहार?"

"जो कुछ चल रहा है, ठीक है। जो होना नहीं, उस के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है, लाज।" नीहार सामने सड़क पर पुतलियाँ जमाये हुए बोला।

"मैं तुम्हें इस प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकती। अच्छा है, कुछ भी अनिष्ट होने से पहले मुझे विष देदो।" लाज का गला भर आया।

नीहार ने उस के मुँह पर पुतलियाँ रपटाईं। कंधे पर प्यार का हाथ

फेरा। हँस कर कहा, "पगली!" और लाज ने अपना सिर उस की बाँह पर रख दिया। कई क्षणों तक वह इसी प्रकार पलकें गिराये, उदास, उस के कंधे से लगी रही। मोटर धीरे होगई। वह नई आँखोंस दोनों ओरके मकान देखता जा रहा था। लाज वैसे ही शिथिल पड़ी थी। एक साफ़-सुथरी लेन में आकर मोटर रुकी। लाज सँभली। ड्राइव्हर ने जरा पीछे देखा। मोटर से उतर कर दरवाजा खोला। लाज ने नीहार का कंधा छूकर उतरने का संकेत किया! दोनों उतर गये। लाज नीहार का हाथ पकड़े खटखट मकान में चली आई।

"तुम्हारा मकान है क्या?"

"हाँ, अब यहाँ कैद हो।" लाज मुसकाकर बोली।

"और सामान तो...।"

"नौकर ले आयगा।"

"लेकिन—।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। आराम करो। वे तो दौरे पर ...। खाना तैयार करती हूँ..।" कह लाज दूसरे कमरे में चली गई।

नीहार खड़ा हो कर, कमरे की सजावट देखने लगा। कभी अँगीठी की कानस पर रखी मूर्तियों को उलट-पलट कर देखता, कभी स्तवक में रखे फूलों को उठा उठा कर सूँघता। कभी तस्वीरों और फ़ोटुओं को ध्यान से देखता—बिना जाने भी उन को पहचानने का प्रयत्न करता।

*　　　*　　　*

नीरा के विवाह को सात वर्ष हो चुके। वह एक बच्चे की माँ भी बन गई। पर अब भी सिहर उठती। जब अपने उन भावुक और नशीले दिनों की याद आती, वह तड़प-तड़प जाती। पर अब चारा ही क्या। नारी-हृदय की तनिक-सी निर्बलता और लज्जा ने भीषण अपराध का खेल खेला। नीहार के

विषयमें वह लाज या अन्य किसी परिचित से मालूम करती रहती; पर चार वर्षों से उसे भी कुछ मालूम न था। लाज से, सहसा जो उसे मालूम हुआ, वह पागल हो उठी। सात वर्ष तक छटपटाता जीवन उस की प्यासी पलकों में तिलमिला उठा।

अपराध तो जीवन भर की बेचैनी बन चुका। भूल तो साँसों की बेताबी बन चुकी। होनी, अनहोनी नहीं हो सकती; लेकिन इस भीषण विनाश का भी क्या परिणाम! नीहार तिलतिल का जल रहे हैं, इस से क्या बनेगा। अपराध तो मेरा है, मुझे मरना चाहिये। नीरा के मस्तक में तूफान उठ खड़ा हुआ। हृदयमें हलचल हो उठी। नीहार से मिलने के लिये वह क्षणभर में बेताब हो गई।

मि. शर्मा सैर को जा चुके थे। नीरा सबेरे ही लाजके घर चल दी। वह प्रसन्न पुतलियों, और चंचल अवयवों से फुदकती फिर रही थी। नीरा को देखा तो हँस कर बोली, "साहब के लिये चाय..।"

"कहाँ हैं?" नीरा ने सहम कर पूछा।

"सामने वाले कमरे में। चल मैं भी आई।" लाज रसोई में से चाय और नाश्ता लेने चली गई। नीरा के पैर न बढ़े। पिण्डलियाँ काँप गईं। दिल धक्-धक् करने लगा। मन जैसे डूबा जा रहा हो। तन जवाब देने लगा। सिर घूम गया। वह वहीं खड़ी रही। लाज ट्रे लेकर आई तो आश्चर्य-चकित-सी रह गई—अरे अभी यहीं!

"साहस नहीं होता लाज, मन बैठा जा रहा है।"

"अच्छा, ठहर।" कह कर लाज नीहार वाले कमरे में चली गई।

नीरा फिर सोचने लगी—क्या इतना भी बल मुझ में नहीं। सात वर्ष बाद सूरत नसीब हो रही है। अपराध किया तो, जी क्या चुराना! जिस के

लिये सात बरस से तरसती रही, आज साहस नहीं। मैं यहाँ आई ही क्यों? भूल की तो उसे स्वीकार करने में भय कैसा? कितने दिन से सोचती थी, उस के चरणों में बैठ कर एक बार तो जी-भर रोलूँ! ओह आज...यह अवसर पाकर भी खोये देती हूँ।

लाज फिर बाहर आई।

"नीरा।"

"हाँ।"

"मिलना न चाहे तो घर पहुँचा दूँ।"

"आई तो मिलने के लिथे ही...पर लाज...।"

"फिर?"

"ओह।—चल, मुझे ले चल। एक बार...।" नीराने लाजके कंधे पर, सहारा लेने के लिये, हाथ रख दिया। लाज धीरे-धीरे उसे कमरे में ले गई। नीरा ने अपने को सँभाला। मन ने अपराध माना, तो उस का दण्ड सहने का बल भी संचय कर लिया।

नीहार दैनिक पत्र में उलझ रहा था।

"चाय बर्फ़ हुई जा रही है, साहब।" लाज ने उसका ध्यान भंग किया।

"ओह! चाय, हाँ।" नीहार ने ज़रा ऊपर देखकर कहा।

और नीरा ने सामने खड़े होकर उदासीसे दोनों हाथ जोड़, पलकें गिरा, सिर झुका लिया। वह पराई आँखों से उसे देखता रह गया। नीरा ने फिर सहमे-से पलकें उठाईं। नीहार का उजड़ा रूप देखा। वह नशीला सौंदर्य, व चमकीली मुसकान-भरी आँखें, वे हवा से खेलते बाल! आह! राकेश! जवानी का खण्डहर। रूप का पतझड़। नीरा सिहर उठी। उसने सँभलकर फिर कम्पित

वाणी में कहा, "नमस्ते जी।" नीहार देखता रह गया।

"अरे, कैसे खोये-खोये से हो रहे हो?—नीरा है।" लाज ने उसका कंधा हिलाकर कहा।

"नीरा—ओफ़! आप हैं श्रीमती नीराजी—बैठिये न।" नीहार बोला; पर न तो उस की वाणी में व्यंग्य था और न गुदगुदी-भरा अपनापन।

"हाँ, मैं नीरा हूँ—नीरा।" बैठते हुए धीमे-से नीरा बोली।

और लाज किसी बहाने से बाहर चली गई।

"नीरा—कौन नीरा?"

"मैं नीरा—क्या सचमुच, मुझे नहीं पहचानते?" नीराने उच्छ्वसित होकर कहा।

"कोई नीरा थी—याद तो पड़ता है। तुम्हीं हो क्या वह नीरा?" नीहार अब भी पराया-सा बना था।

"हाँ, वही नीरा—तुम्हारी नीरा। आज वही नीरा...अपराधिनी। आज तुम्हें खोकर भी...! तुम्हारा विनाश करके भी...।"

"प्रसन्न है—जीवित है!"

"जीवित हूँ। चाह कर भी मर न सकी। अपराध करके भी मर न सकी। अब मरने की शक्ति भी नहीं है नीहार।"

"कपट की मूर्ति, काम की प्यास। आज किसलिये? चमन में आग लगा कर, उसकी राख ठुकराने के लिये—प्रसन्न होने के लिए? आज सात वर्ष...आहों-कराहों-भरा...जीवन—बैचेनी और बेताबी-भरा...। मेरा सर्वनाश करके आज उत्सव मनाने आई हो क्या नीरा? आज यहाँ किसलिये—अपराधिनी?"

"अपराध का दण्ड पाने के लिये।"

९

" दण्ड ?—धृष्ट-अपराधिनी। दण्ड—तुम्हें दण्ड ?" रोष में कम्पित नीहार ने नीरा की कलाई पकड़ ली।

" हाँ—दण्ड। दण्ड पाने के लिये—।" नीराने दृढ़ता से कहा और नीहार ने 'चट्-चट्' 'चट्-चट्' उसके गालों पर कई चाँटे लगा दिये। वह न रोई, और न हिली-डुली ही। गाल नीहार के सामने किये रही। नीहार आपे में न था। उसके सामने सुकुमार आशा-भरे जीवन की चिता जल रही थी। बरबादी की धूल उड़ रही थी।

" अभी मन नहीं भरा ?" कह वह फिर 'चट्-चट् 'चट्-चट्' नीरा के गालों पर चपत लगाने लगा।

" अरे—अरे !" कहते हुए लाज दौड़ी आई। छुड़ाते-छुड़ाते भी उसने 'चट्-चट्' 'चट्-चट्' कई चपत जड़ दिये।

लाज ने नीरा को सँभालते हुए, उसे अलग किया। और आश्चर्य-मिश्रित क्रोधमें नीहार की भर्त्स्ना की, " घर आये के साथ यह व्यवहार ? उस के पति सुनेंगे तो...। तुम पागल तो नहीं हो गये नीहार ? मनुष्यता भी भूलने लगे। और तुम्हारा अधिकार भी क्या ?—अशिष्ट—असभ्य !"

" मैं पागल हूँ —अशिष्ट—असभ्य ! अब तुम मुझे सभ्यता सिखाओगी ? इसीलिये शायद एक जंगली आवारा को पकड़ लाई हो ? एक दिन खाना खिला कर मुझे सभ्य बनाने का अधिकार भी तुम्हें मिल गया। अच्छा, माफ़ करना नीरा।" कह कर नीहार उठ कर चलने लगा। दोनों ने अपराधियों की तरह देखा, नीहार की पलकें भींग चलीं। लाजने झपट कर रास्ता रोक लिया।

" कहाँ जा रहे हो ?" व्यथित हो उसने पूछा।

" जहाँ मेरे लिये उपयुक्त स्थान हो। एक असभ्य के लिये जगह हो। मैं तो पहले ही न आता था। तुम हठ करके ले आई। अपने ये रईसी ठाठ-बाट

दिखाने के लिये—कार और कोठी, काउच और कालीनों की शान दिखाने के लिये। देख लिया—अच्छा है।" नीहार का एक-एक शब्द लाज और नीरा के हृदय में विष-दंशन-सा चुभा।

"पर मेरे भैया—भैया नीहार।" लाज उसका हाथ पकड़ वेदना-वाणी में तड़प उठी। उसकी आँखें भी भीग चलीं। उसे लगा, उसने भीषण भूल की। इतने दिन के बाद उसे पाकर भी वह खोने लगी। वह विलक्षण स्थिति में पड़ गई।

"रहने दो लाज। मेरी उपस्थिति तुम्हारी कोई शोभा तो नहीं है। क्षमा करो लाज। क्षमा करो, नीरा—अपराध हुआ।" कह, नीहार ने हाथ छुड़ा, दरवाज़े के बाहर पग बढ़ाया कि तर पलकें लिये नीरा ने आकर रोक लिया, और वह लाज से बोली, "तुमने तो लाज, मेरा शेष अधिकार भी छीन लिया। क्या मैं नीहार की इतनी भी न रही कि अपराध का दण्ड पा सकूँ। आज मन की निकल जाती। यह भी अवसर न मिला। घड़ी-भर इनके चरणों में बैठ कर रो लेती—अपने हृदय की कह सकती। मेरे ऊपर तरस खाओ लाज, आज मुझे हल्का हो जाने दो।"

लाज अधमरी-सी दूसरे कमरे में चली गई। नीरा नीहार का हाथ पकड़ भीतर ले आई। नीहार को सोफ़ा पर बैठा, उस के पैरों के पास फर्श पर बैठने लगी तो नीहार ने उसे खींच कर बराबर बैठा लिया। नीरा ने कातर दृष्टि से नीहार को देखा। उसकी पलकें तर हो रही थीं।

"नीहार!" उमड़ते आँसुओं में नीरा की वाणी डूब गई।

"मुझे माफ़ कर दो। मैं सचमुच पागल हो गया हूँ क्या? लाज ठीक कहती है—मैं पागल हूँ। नीरा, ठीक बताओ, मैं पागल हूँ? नीरा मैं...पाग्...मेरी नीरा—नीरा।" कह, नीहारने नीरा की गोद में सिर रख दिया और सिसक-सिसक कर रोने लगा।

" ऐसा न कहो अच्छे, नीहार! चाहे मुझे मार भी डालो...पर अपने को सँभालो...नीहार अपने को बरबाद मत करो। विष खा के मर जाऊँगी, तुम्हें इस हालत में नहीं देख सकती। नीहार ओह... नीहार।" नीरा उस के हृदय से लग, फूट-फूट कर रोने लगी।

आधा घण्टे तक नीरा इसी प्रकार उसके वक्ष से लगे सिसक-सिसक कर रोती रही। नीहार भी भीगी आँखें लिये, उसे हृदय से लगाये रहा।

" वह भी आये हैं।" भीतर आते हुए लाज ने उन्हें धीरे-से सचेत किया।

" अरे—उन को बाहर ही रोक...।" सँभलते हुए नीरा बोली।

" जाऊँ? नीहार, कैसे कहूँ ये सात वर्ष किस दर्द और विकलता से...। बोलो नीहार, मैं क्या करूँ? मैं मर क्यों न गई।" कह कर नीरा फिर सिसक सिसक कर रो पड़ी।

" पगली। अरे, वह बाहर खड़े हैं।" लाज ने नीरा को सँभाला और एक बार फिर धड़कन-भरे दिल, वेदना भरे तन, और बेताब साँसों में भूली नीरा ने नीहार को आलिंगन किया।

" जा नीरा —।" कह नीहार ने आँसू पोंछ उसे कमरे के द्वार तक पहुँचाया। और स्वयं सोफ़ा पर शिथिल हो कर पड़ रहा।

* * *

नीरा जब नीहार के कमरें से निकली तो साड़ी को इस प्रकार सँभाल कर ओढ़ा कि उसके कपोल ढक गये। पर कहाँ तक छिपाती, घर आकर शर्माजी ने उस का लाल-लाल आनन और सूजी-सूजी आँखें देखीं तो अजीब उलझन में पड़े। नीरा के सुकुमार कपोलों पर उँगलियों की छाप स्पष्ट दीख गई। अनोखी, अनजान, अपरिचित स्थिति। नीरा अत्यन्त सकुचाई और उदास। हुआ क्या। लाज के यहाँ मिलने गई थी।

इधर नीरा बचाव के लिये घर आते ही स्नानघर में चली गई। शीशे में जो अपनी सूरत देखी तो धक-से रह गई। गालों पर उँगलियों के निशान। नीरा काँप उठी। हे भगवान, आज क्या होगा। आज क्या सारा भेद खुल जायगा! मेरी भूल कितने घर बर्बाद करेगी। और मुन्ने का भविष्य?

आख़िर, कब तक यहाँ ठहरती। सहमती—सकुचती बाहर आई। शर्माजी जैसे उस की राह देख रहे हों। वह कमरे में जा कर पलँग पर लेट गई और शर्माजी भी आकर पास बैठ गये। बहुत-देर तक मौन और बचाव का वातावरण रहा। इस ने सन्देह और उलझन को और भी बढ़ा दिया। शर्माजी पूछ ही बैठे, "आज कैसे हो रही हो नीरा?"

"जी ठीक नहीं।"

"क्या—हुआ क्या?"

"कुछ भी नहीं—अच्छे, ज़रा मुझे...।" नीराने अनुनय की।

"फिर भी तो नीरा, मुझे बताओ न, क्या हुआ?" शर्माजीने ज़रा झुक कर प्यार से कहा। नीरा बह चली। शर्माजी को और भी उलझन हुई।

"बताओ न नीरा, तुम्हें मेरी क़सम।"

"अच्छे, मुझ पर तरस खाओ। तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ—" नीरा की वाणी में करुणा, विवशता और मन-मथनेवाली वेदना छटपटा उठी।

शर्मा जी उसके मस्तक पर हाथ फेर, वहाँ से उठ गये। नीरा को वह बहुत प्यार करते थे। उसके व्यक्तित्व का मान भी उनकी दृष्टि में बहुत था। एक समझदार पति और उदार मनुष्य वह थे। उन्होंने आग्रह न किया।

दिन इसी उदासी, बचाव और संकोच में बीत गया। नीरा कमरे में पड़ी-पड़ी, विभिन्न विचारों में बहती, आँसुओं और आहों की चपेटें खाती रही।

वह सिसक-सिसक कर रोई। इसलिये नहीं कि नीहार से अपमानित हो आई। इसलिये कि उसकी नासमझी ने नीहार को बरबाद कर दिया। नीहार, मैंने तुम्हारी हत्या कर डाली! तुम क्या थे, क्या हो गये!

रात एक पहर बीत चुकी थी। नीरा ऊपर कोठे पर, पलँग पर, पड़ी तारे गिन रही थी। दिन-भर का आँधी-तूफान रुक चुका था। पुतलियाँ निखर चुकी थीं। मन का आकाश धुल कर साफ़ हो चुका था। नीरा पड़ी-पड़ी पुरानी कहानी याद कर रही थी। शर्मा जी आ गये। नीरा उठ बैठी। वह बराबर बैठ गये। नीरा के मुँह पर अब भी उदासी और झिझक खेल रही थी। झिझकती पुतलियोंसे उसने शर्माजीकी आँखों में झाँका। शर्माजी ने कोमलता से उसे बग़ल में लेते हुए कहा—नीरा। और नीराकी पलकोंमें फिर मोती झूलने लगे।

"क्या है नीरा, बताती क्यों नहीं?" शर्माजी ने विह्वल हो पूछा।

प्यार की ठेस पाकर नीरा का घाव और भी छिल गया। सिसक पड़ी। शर्माजी ने चुमकार कर चुप करना चाहा। अश्रु डूबी नीरा ने अपना सिर शर्माजीकी गोदमें रख दिया और लबालब-भरे कटोरों-जैसी आँखें शर्माजीकी प्रश्नातुर आँखों में डाल दीं।

"क्या हुआ नीरा?—अच्छी, नीरा, बताओ न। मुझसे क्यों छिपाती हो? मैं तुम्हारे जीवन मरण—सुख-दुख—का साथी हूँ—तुम्हारा पति।"

"तो क्या मैंने पत्नी का कर्तव्य निबाहने में कभी भूल की? कोई अपराध किया हो तो मुझे माफ कर दो। क्या माफ़ नहीं करोगे?"

"इन सात वर्षों में भी तुम मुझे नहीं समझ पाई, नीरा। तुमने मेरे प्यार में क्या कभी कमी देखी? यही तो दुख है कि आज तुम मुझसे इतनी दूर भाग रही हो। बताओ न—मेरी नीरा!"

"मुझे माफ़ कर दोगे?—दण्ड भी चाहे दो, बोटी-बोटी काट कर फेंक

दो; पर अविश्वास न करना। मन से मुझे माफ़ कर देना।" नीरा की आँखें अब भी डबडबा रही थीं।

"नीरा —" कह शर्माजीने एक करुण चुम्बन लिया और धीरज दे कर बोले, "बोलो न क्या हुआ?"

"सात वर्षों से मन के तूफ़ान को दबाये हूँ। सात वर्षों से हृदय में भयंकर आग जल रही है। पर तुम्हें उस की तपन तक न लगने दी। सात वर्षों से हृदय में ज्वार आ रहा है, पर मर्यादा का तट भी न छूने दिया। आह; पर आज... बस की बात न रही!" कह, नीरा सँभल कर बैठ गई। उसमें साहस भी आ गया।

"अभी तक तुम पहेली ही रही नीरा।"

"सात वर्षों से... सात वर्षों का सयंम। सात वर्षों का बाँध आज टूट गया। मुझे माफ़ कर दो।" नीरा फिर आँसुओं में फूट पड़ी।

"तो हुआ क्या?"

"मैं लाज के यहाँ गई थी...।" नीरा कहते-कहते फिर रुक गई।

"तब?"

"नीहार से मिलने... चाहने पर भी अपने को न रोक सकी। आज सात वर्ष बाद...।" नीरा की साँस तेज़ हो गई।

"नीहार से मिलने?"

"हाँ"

"और गालों पर निशान कैसे?"

"उसी के चपतों के निशान।"

"नीहारके—इतना साहस? मेरी औरतका अपमान...और लाज? तुम नीहार से पिट आई?" शर्माजी उत्तेजित और विस्मित होकर बोले।

"हाँ, अगर मार भी डालते।"

"क्या—यह क्या नीरा? इस का मतलब?"

"कल पाँच वर्ष बाद आवारा घूमते हुए लाज को मिल गये। वह उन्हें घर ले आई। खबर मिली तो मैं भी पागल हो गई और आज सुबह पैर उधर चल दिये... पागलपन में नीहार ने...।" कहते-कहते नीरा की आँखें फिर तर हो गईं।

"तुम मेरी पत्नी हो नीरा...।"

"तो भी, किसीकी कुछ और भी हो सकती हूँ। तुम्हारे व्यक्तित्वमें लीन होकर भी क्या मेरा स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रह सकता?"

"तुम्हारे स्वतंत्र व्यक्तित्व को मैंने क्या कभी ठेस लगने दी?"

"तभी तो मुझे कहने का साहस भी हो गया।"

"तब भी तुम्हारा अपमान— अपनी पत्नी का अपमान—क्या मैं सहन कर लूँगा।"

"तुम्हारी पत्नी होने से ही तो मैं अपराध-मुक्त नहीं हो जाती। मैं किसी की हत्या कर दूँ, तो इसीलिये, क्या कानून मुझे माफ कर देगा कि मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।"

"इसका अर्थ?"

"मेरे कारण ही आज नीहार का जीवन उजड़ गया। एक हरा-भरा जीवन मैंने ही बरबाद कर दिया। एक आशा-भरी दुनियाँ जला डाली। एक भावुक हृदय निर्दय पैरों से कुचल डाला। आज वह पागल...आवारा...। विक्षिप्त-सा...। ओह! मैंने कितना भीषण अपराध...।"

शर्माजी समझ गये। नीहार को वह उसकी पुस्तकों और चित्रों से जानते थे। उसकी शारीरिक और मानसिक सुन्दरता पर भी वह मुग्ध थे।

फिर भी नीरा की बात सुन कर लगा, जैसे आकाश में बहुत ऊँचे से हवा में उन्हें छोड़ दिया गया हो। न उनको क्रोध हुआ और न नीरा के चरित्र पर सन्देह। मानसिक परेशानी और उलझन में वह अवश्य पड़ गये। उनको परेशान विचारों में डूबा देख, नीरा छटपटाकर बोली, "मुझ पर अविश्वास न करना — चाहे जीवित जला डालना ...।"

"नहीं नीरा... सात वर्ष का विश्वास और प्रेम डगमगायगा नहीं।" कह शर्माजी ने उसे सान्त्वना दी।

*　　　*　　　*

रात–भर शर्माजी और नीरा अलग-अलग लेटे रहे। नींद न आई। शर्माजी के हृदय में उथल–पुथल होती रही। नीरा पर अविश्वास उन्होंने कभी नहीं किया। सात वर्षों तक उन्हें कभी सन्देह का संयोग न मिला। नीरा ने कर्तव्य और प्रेम करने में कभी तनिक भी कमी न दिखाई। लेकिन आज शर्माजी को यह अकस्मात-सा लगा। वह बहुत देर तक विचलित हुए; पर समझदार, शान्त मस्तिष्क और उदार वह थे, गलत सोचकर और भी उलझन न बढ़ने दी। नीहार से मिलने के लिये वह बहुत दिन से उत्सुक थे। जब उसकी बरबादी पर ध्यान गया तो उन की और भी सहानुभूति उमड़ आई।

पलकों के पंख फड़फड़ा कर नीरा के नयन पंछी रात का रास्ता तय करते रहे। थकान, गीलापन, बेबसी और सपनो का बोझ लादे। रात-भर वह पड़ी सोचती रही—मेरे कारण नीहार का जीवन नष्ट हो गया। और शर्माजी को इससे कितनी चोट लगेगी! लेकिन न कहती तो और भी पाप होता। अब मन हल्का है। अगर शर्माजी बड़े से बड़ा दण्ड भी दें तो सहन करूँगी। पर मरन तो तब है, अगर वह भीतर ही भीतर घुटने लगें।

सबेरा हुआ। शर्माजी ने नीरा को अपने पास बैठा कर प्यार से उसे

हृदय से लगाया, तो नीरा ने कातरता-विह्वल पुतलियों से छटपटा कर शर्माजी से पूछा, " मुझसे घृणा नहीं ? "

" पगली !—घृणा किसलिये ? "

" गलती हो गई—मुझे माफ...।"

" कैसी गलती ?—हुश ! जो हुआ, उस पर अब पछताना क्या। अब तो...।"

" क्या ? "

" नीहार की बरबादी का मुझे दुख है...।"

" और चारा ही क्या ?"

" अगर तुम समझती हो नीरा, तुम्हारे समझाने-बुझाने या...। "

" इसका अर्थ ? "

" तो तुम उसके पास रह सकती हो। मनुष्यके जीवनका—विशेषकर नीहार-जैसे जीवन का तो और भी—बहुत मूल्य है। तुम चाहो तो कुछ समय उसकी सेवा में रह लो। मेरे प्रेम में तनिक भी अन्तर नहीं आयगा। तब भी तुम मेरी प्यारी पत्नी रहोगी।"

" यह क्या ?—लोग क्या कहेंगे ? मैं क्या मुँह दिखाऊँगी। ओह ! तुम मेरे देवता ! तुमने तो...क्या यह सम्भव है ? अगर मैं उसके जीवन को बरबादी से बचा सकूँ ! " नीरा जैसे आशातीत स्वर्ग पा गई।

" मैं ही स्वयं आज्ञा दे रहा हूँ। चाहो तो यहाँ भी रख कर इलाज हो सकता है।—हम दोनों मित्र बन जायँगे। तुम मेरी पत्नी, उसकी मित्र और एक नर्स। "

"ओह—मेरे देव ! तुम...सचमुच...तुम !" कह नीरा भावोच्छ्वास में उड़ती-सी शर्माजी से लिपट गई।

धकधक हृदय से बहुत देर तक वह उनके हृदय से लगी रही।

"समय हो रहा है—कहो तो मैं भी..." शर्माजी ने उसे सँभालते हुए कहा।

"हाँ—हाँ...।" कह नीरा खड़ी हो गई।

दोनों नीहार से भेंट करने लाज के घर चल दिये।

लाज उजड़े-से रूप और बिखरे-से विचारों में सोफ़ा पर बैठी थी। दोनों को पाकर आश्चर्य, आशंका और उलझन हुई। कलकी घटना उस के मस्तक में कौंध गई। फिर भी उसने सँभल कर नमस्ते की। दोनों को पास बैठाया।

क्षणभर तक एक-दूसरे को पढ़ने के बाद मौन टूटा, "कैसे भूल पड़े इधर ?" लाज ने कहा।

"आप के मेहमान साहब हैं न ?"

"कहिये ?" लाज ने घबराते हुए सँभल कर पूछा। आशंका हुई—कलवाली बात।

"उन की गिरफ्तारी है।" शर्माजी बोले।

"गिरफ्तारी !—कैसी गिरफ्तारी ?" लाज उदास हो गई।

"गिरफ्तार करके कैदमें डाल दिया जायगा, तब उनका इलाज होगा।"

"इलाज ! ओह—हे भगवान !" लाज ने उच्छ्वास छोड़ा !

"पागल सी कैसी हो रही है ?—शर्माजी चाहते हैं कि नीहार को वह घर पर रखें। मैं उनकी खिदमत करूँ। शायद उन का दिल बहल जाय। मन ठिकाने आ जाय।" नीरा ने समझाया।

"ओह इलाज—अब क्या इलाज होगा !"

"क्यों-क्यों ?—क्या हुआ !"

" तुम्हारे जाने के बाद घण्टों तक पड़े-पड़े आँसू बहाते रहे—अछताते-पछताते रहे। मेरे कलेजे से लगे बहुत देर तक सिसकियाँ भरते रहे। रात भर मुझे न छोड़ा। करीब तीन बजे रात, थक कर लेट रहे—नींद का बहाना कर के...। मैंने कितना समझाया—नीरा कुछ न कहेगी। सचमुच, वह पागल हो गये हैं, नीरा। विक्षिप्त-से बकते रहे...आह...अब क्या इलाज होगा...फूल-सा जीवन बरबाद हो गया। मेरा भाग्य! मैं पाँच बजे देखने को उठी...तो...।" लाज फूट-फूट कर रो पड़ी।

"तो...?" नीरा ने उत्सुक हो पूछा।

लाज ने सिसकते हुए एक पर्चा उस को थमा दिया। नीरा पढ़कर चीख उठी। शर्माजी दोनों को सँभालने लगे।

★

प्रकाश-पथ

[मार्च, १९४८]

बम्बई

डाक्टर कुमार स्वभाव के इतने मीठे और विनोदी कि पहली भेंट में ही रोगी को अपना बना लेते और उसके बन जाते। निदान और चिकित्सा में तो अत्यंत कुशल हैं ही, मनोविज्ञान के भी पूरे पण्डित हैं। एक महीनेसे वह कुमुद का इलाज कर रहे हैं, पर उनकी सभी जादूभरी औषधियाँ व्यर्थ! कुमुद डाक्टर कुमार से बहुत हिलमिल गई, तो भी अपने को प्रकट करने में बहुत लजीली और छिपा रखने में मायाविनी। बार-बार प्रयत्न करने पर भी कुमार उसे और रोग को समझ नहीं पा रहे—जैसे रोग और रोगी उनको चुनौती दे रहे हों। कुमार अपनी असफलता से और भी उत्साहित होते और रोग की जड़ जानने की धुन में लग जाते।

सुबह आठ बजे, कुमुद तकिये के सहारे अधलेटी–सी आराम कर रही थी। माताजी और भाभी भी पास बैठी थी। एक हाथ में दवा का बक्स और दूसरे में दैनिक 'आलोक' लिये कुमार ने मुसकराते हुए प्रवेश किया।

"चारपाई छोड़नी है या नहीं? अब तो बहुत दिन आराम कर लिया।" मुसकराते हुए कह, कुमार पलंग पर ही बैठ गये।

"आप छुड़वाना ही नहीं चाहते।" पीली मुसकान से कुमुद बोली।

"वैसे, इनकी दवासे रोग पूँछ दबा कर भागता है।" माताजी बोलीं

" कुमुद को ही नहीं लग रही—।" भाभी ने आश्चर्य किया।

" यही पहला मौका है, जब उलझन में पड़ा हूँ, वरना मेरी दवाको लोग जादू बताते हैं।"

" अपनी प्रशंसा करना भी आजकल की मुख्य कला है और डाक्टर साहब इसमें काफी निपुण हैं।" कुमुद ने मुसका कर व्यंग्य किया।

" हुश पगली– ऐसे नहीं कहते।" माताजी ने मीठी फटकार बताई और किसी काम की याद आने से बाहर चली गईं।

" बुखार, दिलकी घबराहट, कमजोरी, खून की कमी—सब है; पर सब क्या है, समझ में नहीं आता।"

" रोग हो तो समझ में भी आये। मरने को जी चाहता है— बस और क्या?"

" तो उस गरीब का क्या होगा, जो कितनी ही रंगीन आशाएँ—" कुमार ने उसके होनेवाले पतिकी ओर संकेत किया।

" कौन?" भोली कुमुद ने पूछा।

" वही—बकील साहब, रत्न बाबू।" भाभीने कहा।

" तेरा सिर!"

" तेरा सिर!" भाभी मुँह बनाकर बाहर भाग गई।

सब खिलखिला कर हँस दिये।

कुमुद के आनन पर उदासी–भरी मुसकान रपटती हुई चली गई।

" हाँ, नाड़ी दिखाओ।" कह कुमार ने नाड़ी देखनी शुरु की और स्वाभाविकता का अभिनय करते हुए बोले, " नाड़ी तो ठीक चल रही है! अब १०–१५ दिन में ठीक हो जायगी। वैसे लड़का भी बहुत अच्छा है — बी. ए. एल–एल. बी. वकील साहब।"

" मुँह धुलालें वकील सा'ब ! और आप भी क्या यही डाक्टरी करते फिरते हैं ? " कुमुद ने एकदम कलाई छुड़ा, मीठे क्रोध में कहा !

" इतना गुस्सा ! अख्खह यह रोब ! मैं तो, सचमुच, डर गया। " कुमार ने उसे हँसाना चाहा, वह न हँसी। कुमार ने गम्भीर मुँह बना कर कहा, " बहुत-से लोग ऐसे होते हैं कुमुद, जो हँसी को दबा कर गुस्सा दिखाने की कोशिश करते हैं; लेकिन डाक्टरी उसूल से यह बात बहुत बुरी है। ' मेडिका ' में साफ लिखा है—।"

" खाक लिखा है। " कुमुद हँस पड़ी और डाक्टर कुमार भी।

" कलवाली दवा ही ठीक रहेगी। " कह डाक्टर कुमार दवा तैयार करने के लिये उठे।

कुमुद 'आलोक' उलटने-पलटने लगी। कुमार ने दवा तैयार करते-करते देखा, कुमुद ' आलोक ' में रम गई। उस के मुख पर मुसकान खिल उठी। वह भूली-भूली-सी चमकती पुतलियों से ' आलोक ' पढ़ रही है। कुमार ने कनखियोंसें देखा, एक समाचार पर उस की नजर जम गई। एकाएक दवा बनाना छोड़, वह कुमुद की तरफ़ झपटे और 'आलोक' छीन लिया।

" पढ़ना मना है। "

" लाइये भी, एक मिनट में क्या हो जायगा ! " नाराज होने के बजाय कुमुद ने अनुरोध किया।

" मैं सुनाये देता हूँ। " कह कुमारने कई समाचार पढ़कर सुनाये। कुमुद उदासी से सुनती रही लेकिन जिस समाचार में उस का मन रमा था, वह न पढ़ा।

" क्या बेकार की बातें...लाइये मैं स्वयं। " कुमुद पत्र छीनने लगी।

" ना-ना, तुम नहीं। कमज़ोरी बढ़ जायगी। लो, मैं ही...। "

कुमार ने फिर पढ़ना शुरु किया, “ कवि पंकज का सम्मान। साहित्य-समिति द्वारा एक हज़ार का पुरस्कार। कानपुर, २० अगस्त—हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि पंकज को उनकी मौलिक काव्य-पुस्तक ‘प्रणयिनी’ पर साहित्य-समिति ने एक हजार रुपये का पारितोषिक प्रदान किया। यह पुस्तक इस वर्ष सर्वश्रेष्ठ रचना मानी गई। और प्रशंसा की बात यह है कि अभी तक पुरस्कार विजेताओं में पंकज सब से अल्पवयस्क है। – बधाई। आलोक की तरफ से भी बधाई।”

समाचार पढ़ कुमार ने कुमुद की तरफ देखा, उसकी आँखों में सलज्ज प्रसन्नता झाँक रही थी। कुमारने हँस कर कहा “ बधाई—हमारी भी बधाई।”

“ हमारी भी बधाई। ” कुमुद भी जल्दी में कह गई। उसकी पुतलियाँ चमक उठीं। कुमार ने उसे देखा—उस की छलकती प्रसन्नता को देखा।

“ तो मैं चलता हूँ—दवा पीने में लापरवाही न करना। ”

कुमार चलने लगे तो माताजी ने भीतर आ, आशा प्रकट करते हुए पूछा, “ जल्दी ही ठीक हो जायगी ? ”

“ आशा तो यही है। ”

“ इतना तंग करनेवाला रोगी भी तुम्हें न मिला होगा। ” माताजी हँस कर बोलीं।

“ घर के डाक्टर को तंग न किया, तो बीमार होने से फायदा ही क्या ? ” कुमुद ने हँस कर और भी मिठास पैदा कर दी।

कुमार हँसते हुए विदा हो गये।

*　　　　*　　　　*

डाक्टर कुमार को रोग का पता तो चल गया; पर निश्चय न हो सका। उस दिन की घटना ने रोग को समझने का मार्ग दिखा दिया। एक दिन साहस

कर के उन्होंने पूँछ ही लिया। कुमुद ने पहले तो छिपाना चाहा; पर कुमार के अनुरोध और प्यार ने विवश कर दिया। वह आँखें गीली करके बोली, "भैया, मैं अपने को खो चुकी। तुम जानते हो शायद। पंकज या मौत–मैं निश्चय कर चुकी।" कुमुद ने फिर करवट लेली। बार–बार अनुरोध करने पर भी वह आगे कुछ न बोली।

कुमुद के विवाह के दिन निकट आते जा रहे थे। रोग बढ़ता जा रहा था। विवाह–तिथि १५ दिन और टाल दी गई। कुमुद जानती थी, विवाह होना नहीं है। तिथियाँ बदलने से क्या लाभ? उसकी मानसिक अवस्था बिगड़ती गई। कभी–कभी पागलों की तरह बकने लगती, दवा की शीशी तोड़ देती और बेहोश तक हो जाती।

आज सुबह से ही, वह और दिनों की अपेक्षा बहुत ज्यादा शिथिल थी। कभी–कभी गुमसुम हो जाती। माता–पिता, भाभी, एक–दो पड़ौसी कुमुदके पास उदास बैठे थे। माताजी की आँखें भीगी थीं। पिताजी बहुत व्यथित थे। कुमार भी आ गये। उदास वातावरण ने उनका स्वागत किया।

"आज तो बहुत ज्यादा सुस्त पड़ी है।" माताजी दुखी होकर बोलीं।

कुमार बिना कुछ कहे बैठ गये। कुमुद को देखा–भाला। वह शिथिल पड़ी रही।

"और किसी को क्यों न दिखा दें, भैया? तुम्हारी दवा तो...।" पिताजी ने पूछा।

"चलिये सामनेवाले कमरे में सलाह करलें। भाभी यहीं बैठी रहेंगी।" कह कुमार खड़े हो गये।

तीनों सामनेवाले कमरे में आकर बैठ गये।

"रोग को तो मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ –चाहे जिस डाक्टर का इलाज कराओ......।" कुमार कहते–कहते रुक गये।

"क्या ?—क्या रोग असाध्य...?" पिताजी ने चोट खाये-से होकर पूछा।

"असाध्य नहीं—घबराइये मत।"

"तो साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते ?"

"मैंने अच्छी तरह परीक्षा करली। कोई भी शारीरिक रोग उसे नहीं, रोग मानसिक है।" कुमार ने झिझकते हुए कहा।

"मानसिक !" पिताजी को आश्चर्य हुआ।

माताजी कुछ भी न समझ पाईं।

"और इसका इलाज डाक्टर नहीं कर सकता।"

"डाक्टर इलाज नहीं कर सकता ? बताओ भी भैया, क्या रोग है। हम कुछ भी उठा न रखेंगे।' माताजी की आँखें छलछला उठीं।

"आप नाराज़ न होवें, क्रोध भी न करें। कुमुद के सामने कुछ भी न कहें। उसकी दशा अच्छी नहीं। प्यार ही उसे कुछ दिन जीवित रख सकता है।" दो क्षण रुक कर कुमार बोले, "मैं कुमुद को बहन की तरह प्यार करता हूँ। यह नहीं चाहता, उस को ज़रा भी...। इसलिये आप से कुछ छिपाना नहीं चाहता। वरना आप को पाली-पोसी लड़की और मुझे एक प्यारी बहन हाथ से न खोनी पड़े।" कह कर कुमार फिर रुक गये।

"फिर चुप गये। अरे बताओ भी।" पिताजी ने आकुलता से पूछा।

माताजी पागल-सी कुमार का मुँह देखती रहीं।

"कुमुद बहुत लजीली और शीलवती है। इसीलिये किसी को ज़रा भी मालूम नहीं। मैंने भी बहुत प्रयत्न, प्यार और अनुरोध से...।"

कहने की बात अब भी कुमार के अोठों पर आकर रह गई।

"क्या? फिर वही चुप्पी! भैया, कुछ कहो भी।" माताजीने व्याकुल हो कर कहा।

"कुमुद पंकज को प्यार...।" कुमार जी बढ़ा कर कह ही बैठे। फिर दबी आवाज में बोले, "यही उस का मानसिक रोग है।"

"कुमार, यह क्या कह रहे हो?" पिताजी ने दुख और क्रोध मिश्रित वाणी में कहा।

और माताजी आश्चर्य, लज्जा, दुःख और रोष से कुमार की तरफ़ ताकती गईं।

"चाचा, क्रोध करने से लाभ नहीं। मामलेकी यथार्थतापर गम्भीरता से विचार कीजिये। क्रोध और जल्दबाजी करने से कुमुद के प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।" कुमारने ज़रा साहस करके कहा।

"कौन है वह......पंकज?" पिताजी आवेशमें बोले।

"किसे मालूम था, कुमुद इस तरह कुल में दाग लगायगी।" माता जी लज्जा और आत्मग्लानि से गड़ी जा रही थीं।

"रोष करना ठीक नहीं, चाची।"

"ऐसी लड़की का मर जाना ही अच्छा। क्या इसीलिये तुझे पाला-पोसा था कुमुद?" पिताजी माथा पकड़ कर बैठ गये और माताजी उमड़ते हुए आँसुओं को आँचल से पोंछने लगीं।

कुमुद के माता-पिता व्यथित हो उठे। कुमुद को बहुत प्यार से पाला गया था। ऊँची शिक्षा भी उसे दी गई थी। उसकी जान बचाने के लिये खर्चीले से खर्चीला इलाज भी किया जा सकता था। पर उसके इस रोग का इलाज उनकी समझ में नहीं आ रहा था। थोड़ी देर तक कमरे में उदास

सन्नाटा छाया रहा। अंत में कुमार ने ही निस्तब्धता भंग की, "चाची, व्यथित होने से काम न चलेगा और कुमुद को डांट फटकार बताने से भी प्रश्न हल न होगा।"

"भाग्य में जो कलंक लगना लिखा है, लग कर ही रहेगा। किसी को क्या मालूम था ...।" माताजी बोलीं। पिताजी गम्भीर उदास पुतलियों से कमरे के बाहर ताकते रहे।

"समझाने से शायद हठ छोड़ दे। तुम्हें मेरी क़सम, जो अभी कुमुद से कुछ भी कहो। थोड़ी बहुत-दवा अवश्य देते रहें। खतरा अभी कुछ नहीं। अच्छा...।" कह कुमार उठ कर बाहर हो गये।

पिताजी मस्तक पर हाथ रखे और माताजी भीगी पलकें लिये वहीं बैठी रहीं।

* * *

शाम का समय, कुमुद 'ज्योत्स्ना' देख रही थी। उसकी माताजी धीरे से पास आ बैठीं। कुमुद के हाथ से 'ज्योत्स्ना' ले ली। तस्वीर ध्यान से देखते हुए माताजी ने पूछा, "किसी की तस्वीर है ?"

"अभी-अभी इन को, एक पुस्तक पर एक हज़ार का पुरस्कार मिला है।" बिना आशंका कुमुद ने उत्तर दिया।

"अरे नाम तो लिखा है—पंकज !" माताजी ने पढ़ा और कुमार वाली बात उनके मस्तिष्कमें तेजीसे चक्कर काट गई। कुमुदने लज्जाभ पुतलियों से माताजी की ओर देखा। और सन्देह से बचने के लिये बोल उठी, "हाँ, इनका नाम पंकज है।"

कुमुद का हृदय धक्‌धक् करने लगा। माताजी ने भी यह अच्छा अवसर समझा। उन्होंने बात छेड़ी, "कुमुद, तू दिन-दिन सूखती जाती है। डाक्टर

दवा दे-दे कर थक गये। विवाह की तारीखें भी बराबर टाली जा रही हैं। आखिर, तुझे क्या हो गया है बेटी, मैं भी तो समझ लूँ।"

"मुझे क्या मालूम। बस, ऐसा लगता है, बचूँगी नहीं।" कुमुद बोली।

"ऐसी बात मुँह पर न ला, कुमुद। मैंने तुझे कितने कष्टों से पाला, तू नहीं जानती। तेरे लिये हम सब कुछ करने को तैयार हैं। असल बात मुझसे छिपाने में तू क्या फायदा देखती है? मुझसे आज दिल की बात कह दे कुमुद बेटी।" माताजी ने ममता-पूर्ण वाणी में अनुरोध किया।

कुमुद सहम गई। धीरे से पूछा, "कौन-सी बात?"

"कुमार जो कहते थे।"

"क्या?" कुमुद का हृदय तेजी से धक्-धक् कर उठा।

"पंकज वाली बात?"

सुनते ही कुमुद का मुँह उतर गया। रंग पीला पड़ गया। हृदय और भी तेज़ी से धड़कने लगा। उसे यह आशंका न थी कि कुमार माताजी से कह देंगे। लेट कर उसने करवट ले ली। लज्जा और आत्मग्लानि से वह और भी शिथिल हो गई।

"कुमुद, क्या इसीलिये तुझे इतनी ऊँची शिक्षा दी गई थी? तेरे ऊपर हमने लड़कों से भी ज्यादा खर्च किया।"

कुमुद कुछ न बोली।

"कहती क्यों नहीं?—पंकज वाली बात सच है?" माताजी का स्वर जरा तीखा हो गया। कुमुद उसी करवट चुप पड़ी रही।

"तुझसे यह आशा न थी कि हमें यह बदला चुकायेगी। बताने में अब क्या शर्म—पंकज वाली बात सच है या नहीं?" माताजी की वाणी में क्रोध और रोष काँपने लगा।

कुमुद दीवार की तरफ़ मुँह किये रो रही थी। उसे कुछ भी सूझ नहीं पड़ रहा था। माताजी को क्या उत्तर दे। कुमुद अंचल में मुँह छिपाये रो रही थी। पिताजी भी आकर उस की चारपाई पर बैठ गये।

कुमुद लज्जा, दुख और ग्लानि से और भी सिमट गई। पिता के प्यार का अनुभव उसे था। माँ की ममता का उसने स्वच्छन्दता प्राप्त करने में खूब उपयोग किया था। पिताजी का सम्मान वह बहुत करती थी। वह लज्जा से गड़ी जा रही थी। आत्मग्लानि में जली जा रही थी। वह चाह रही थी कि पिताजी पर बात प्रकट होने से पहले ही उसके प्राण निकल जाते। अच्छा हो, ज़मीन फट जाय, वह उसमें समा जाय।

" तो तूने क्या सोचा, कुमुद ? आज साफ़-साफ़ कह दे। " पिताजीने प्यार से पूछा।

" पंकज के गीत गा रही है।" माताजीने उत्तर दिया।

" यह तुम्हारी ही करतूत है। कहता था, लड़की को इतनी स्वतंत्रता मत दो। तुम सदा इसका पक्ष लेती रहीं। मुझसे लड़ने पर उतारू हो जाती- अब उसका फल भोगो। " पिताजी क्रोध से बोले।

" मुझे क्या मालूम था।...जब देखो, सारा दोष मुझ पर ही मढ़ते रहते हैं। " आँसू गिराते हुए माता जी ने कहा।

" मुझे कलंक लगना था—और क्या। मेरा भाग्य—दोष किसे दूँ। एक वे पिता हैं, जो सन्तान के लिये कुछ भी न करके, यश पाते हैं और एक मेरे जैसे अभागे पिता, जो संतान के लिये सब-कुछ करके भी कलंक लेते हैं— निन्दा और तिरस्कार के भागी बनते हैं। " पिताजी व्यथित उच्छ्वासों में तड़पकर बोले।

उनके वेदना-शब्द कुमुद के हृदय पर विष-तीर की तरह लगे। वह

तड़प कर चीख उठी, "पिता जी" और सिसकियाँ लेते हुए पिताजी से लिपट गई। उन्होंने क्रोध के आवेश में उसे बिस्तर पर फेंक दिया। वह सिसक सिसक कर रोने लगी।

"अब 'पिताजी-पिताजी' करती है, हमें कलंकित करनेवाली। पिताजी को उसके प्रेम का अच्छा बदला दिया। हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रहे। क्या इसीलिये तुझे... ?"

रोते-रोते कुमुद की आँखें लाल हो गईं। आँसुओं ने धुँधला रास्ता साफ़ कर दिया। संकोच की काई धुल गई—साहस का आसमान निखर उठा। वह साहस कर रोते-रोते बोली, "पिताजी, कुमुद अपनी जान दे देगी; पर अपने माता-पिता के नाम पर दाग़ न लगने देगी। माता-पिता के सम्मान और गौरव की कीमत वह जानती है।"

"बड़ी मुँहफट हो गई—अब तो। कैसे-कैसे उत्तर देती है।" पिताजी अब भी क्रोध में थे।

"काहे को उसकी जान लिये डालते हो? समझाने से मान जायगी। बेटी, ज़रा होश सँभाल—अपने माँ-बाप की इज्ज़त का ख़याल कर।" माताजीने कुमुद को समझाया।

कुमुद की आँखें सूख चुकी थीं। उसे कर्तव्य का ज्ञान हो चुका था। जब मरना ही निश्चित है, तो संकोच क्या। पाप तो कोई उसने किया नहीं। वह साहस कर, उठ बैठी।

"पिताजी, कुमुद ऐसी लड़की नहीं, जो अपने मा-बाप को कलंकित करे। मेरे कारण आप के नाम पर ज़रा भी धब्बा आये, तो मैं विष पीने को तैयार हूँ।"

"तो बेटी तू ही सोच, तेरा विवाह रतन से न कर के, यदि पंकज से किया

जाय तो लोग क्या कहेंगे ?" पिताजी का क्रोध प्यार में बदल गया और माताजी आशा-भरी दृष्टि से कुमुद की तरफ़ देखने लगीं।

"मैं पहले ही मर गई तो यह प्रश्न ही नहीं उठता। मेरा जीवन समाप्त होने को है। इसलिये आज सारी लाज और सब संकोच एक ओर रख चुकी हूँ। अपना हृदय आज खोल कर रखने में मुझे कोई भी झिझक नहीं। मैं तय कर चुकी हूँ—पंकज या मौत।"

"तो हमारी बदनामी का तुम्हें ज़रा भी ध्यान नहीं ?"

"अगर मैं पंकज के साथ भाग जाती, तो आपकी बदनामी होती। कुछ और भी कर बैठती तो आपको कलंक लगता। ऐसा कोई भी अनुचित काम करने से पहले मैं आत्महत्या कर लेने को तैयार हूँ।"

"रतन में क्या दोष है, मैं पूछती हूँ ?" माताजी ने पूछा।

"मैं कुछ नहीं जानती। पंकज को मैंने चुन लिया। वह नहीं तो मौत—इसके सिवा कुछ नहीं। आपके जिस शीतल प्यार की छाया में, मैं, पली, उसे लाख जन्म में भी नहीं भूल सकती। मेरा रोम-रोम ऋणी है, हजारों जन्म लेकर भी वह ऋण नहीं चुकाया जा सकता। मेरे लिये कितना खर्च किया—कितने कष्ट सहे ! मैं आप की मर्यादा को आँच न आने दूँगी। अभागिनी कुमुद—अपनी बेटी कुमुद को क्षमा कीजिये। मैं अभागी आप को कुछ भी सुख नहीं दे सकी। पर आपके नाम पर बट्टा लगने से पहले इस घर से कुमुद की लाश...। पिताजी......माताजी...क्षमा....क्षमा !" कहते-कहते कुमुद पिताजी की गोदमें बेहोश हो, गिर पड़ी। पिता जी की आँखें भीग गईं। रोते-रोते वह उसे सँभालने लगे। माताजी दवा लानेके लिये मेज़ की तरफ़ झपटीं।

*   *   *

माता-पिता विचित्र स्थिति में पड़ गये। कुमुद की जीवन-रक्षा करना आवश्यक था, और उसकी इच्छानुसार पंकज के साथ उसका विवाह करके समाज में अपमानित होने का भय भी उन्हें खाये जा रहा था। बीमारी तेज़ी से बढ़ती जा रही थी। कुमार तथा अन्य डाक्टरों ने बताया कि रोग शरीर पर आक्रमण कर चुका है, शीघ्र ही कुछ न किया गया, तो प्राणों के जाने की भी आशंका है।

कुमुद हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गई। आज बीमारी का ३५ वाँ दिन था। जवानी का खण्डहर, सुन्दरता का उपहास, सूखी हुई लता—कुमुद बिस्तर पर पड़ी थी। पिताजी और डाक्टर कुमार दूसरे कमरे में बैठे सलाह कर रहे थे।

" एक बात हो सकती है। " कुमार बोले।

" क्या ? " पिताजी की गीली आँखों में आशा की ज्योति चमक उठी।

" पंकज को बुला लिया जाय। वह कुमुद को समझा देंगे। शायद कुमुद मान जाय। "

" किसीको पता चल गया, भैया, तो लोग जीने न देंगे। "

" चाचा, ऐसी बातें सोचने का समय नहीं और किसी को मालूम ही क्यों होने लगा ? "

" जो चाहो, करो। मेरी बुद्धि काम नहीं दे रही। अपनी चाची से भी पूछ देखो। "

" कोई आवश्यकता नहीं। चलो, कुमुद के पास बैठो। मैं सारा प्रबन्ध किये देता हूँ। " कह कर डाक्टर कुमार साइकिल उठा कर पंकज के घर की ओर दौड़े।

वह कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे। जरा देर की बहस के बाद

दोनों कुसुद के घर चले आये। आगे आगे कुमार और पीछे पीछे धड़कता हृदय लिये पंकज अन्दर गये।

उनकी आहट सुन कर पिताजी उस कमरे से पहले ही बाहर हो गये। सब ने दूर से देखा—एक सुन्दर, सुडौल युवक कुमुद के कमरे में गया। क्षण-भर पंकज अप्रतिभ और आशंकित-से रहे। पिताजी खिड़की की दराज से सब-कुछ देख रहे थे। कुमार उठ कर कुमुद के पास गये। वह पंकज की ओर से मुँह फेरे पड़ी थी।

"कुमुद बोल, क्या माँगती है? जो माँगेगी, वही मिल जायगा। पगली रोना बन्द कर!" कुमार ने पलंग पर उसके पास बैठ कर कहा।

कुमुद ने आँखें खोलीं।

"कुमुद, रो मत! बोल, क्या माँगती है?"

"बड़े देनेवाले आये!"

"शर्त लगा ले!"

"बुला दो पंकज को! अगर न बुला सके, तो देखना!" कुमुद के मुख पर मुसकान खण्डहर में जुगनू की तरह चमक उठी।

"अच्छी बात—एक.. दो.. तीन...।"

कुमुद ने करवट लेते हुए कहा—"बस!" और पूरी करवट ले कर जो देखा, तो विस्मय और प्रसन्नता से उसकी आँखें चमक उठीं। उसके मुख से निकला— "ओफ़!" और उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया।

कुमुद को उजड़ी फुलवारी के रूप में देख कर पंकज तड़प उठा।

"कुमुद!" कुमार ने उसके हाथों को मुख से हटा दिया। और बाहर हो गये।

वह आँखें बंद कर शिथिल पड़ रही। पंकज धीरे से उठ कर उसके

पास गये, और उसके माथे पर हाथ रख कर कोमल स्वर में बोले—
"कुमुद !"

"तुमने यह क्या किया ? पिताजी क्या कहेंगे ? ओह ! मैं मर क्यों न गई ! माताजी को क्या मुँह दिखाऊँगी।" कुमुद घबराहट-भरे और लजीले स्वर में बोली।

"तुमने यह क्या कर डाला, कुमुद ?" पंकज के शब्दों ने कुमुद के बुझते हुए दिल में अमृत भर दिया।

"जीवन एक तरह का जुआ है ! दाव पर लग गया, सो लग गया। हार-जीत की कौन चिन्ता करे ?"

"कुमुद, जीवन को साधारण दाव की तरह हारना समझदारी नहीं ! जीवन की रक्षा करना भी हमारा धर्म है !"

"जिसे आप साधारण समझते हैं, वही किसी के लिये महान भी हो सकता है !"

"तो क्या त्याग का जीवन में कोई महत्त्व नहीं ?"

"आप का मतलब ?"

"माता-पिता के लिये अपनी इच्छाओं का त्याग करना भी हमारा कर्त्तव्य है !"

कुमुद के पिता पंकज की समझदारी और कर्त्तव्य के प्रति लगाव पर मुग्ध हो गये। उन्हें आशा हुई कि अब कुमुद निरुत्तर हो जायगी और समस्या सुलझ जायगी।

"त्याग के महत्व को मैं जानती हूँ, और इच्छाओं के त्याग से बड़ा त्याग—अपने प्राणों का त्याग—मैं माता-पिताके लिये ही कर रही हूँ, पंकज बाबू !"

कुमुद की बात उसके पिता के हृदय में तीर की तरह चुभ गई। वह तिलमिला उठे।

" यह तो हठ है कुमुद। "

" हठ नहीं, आत्म-बलिदान! यदि माता-पिता के लिये त्याग का महत्त्व मैं न जानती, तो कोई और रास्ता चुनती!" कुमुद की आँखें गौरव से चमक उठीं, और उसके पीले चेहरे पर लावण्य झिलमिला उठा।

" मेरी आज्ञा ही सही, तुम मुझे भूल जाओ, और पिताजी की इच्छा-अनुसार अपना विवाह कर लो?" पंकज अधिकारपूर्ण वाणी में बोले। हृदय में अपने शब्दों के कारण जो तिखी टीस उत्पन्न हुई, उसे वह बड़ी कठिनाई से छिपा सके।

" आप आज्ञा देनेवाले कौन? मुझे उपदेश की आवश्यकता नहीं। क्या लाभ हो सकता है, उसे उपदेश देकर, जो मृत्यु के मार्ग पर पैर बढ़ा चुकी हो? विवाह एक बार होता है! पार्वती ने शंकर को चुना था, और सावित्री ने सत्यवान को। बस, इसके बाद आप कभी भी उपदेश देने का कष्ट न करें!" कुमुद की वाणी में तीखापन आ गया।

" कुमुद, तुम बड़ी कठोर हो!" कह पंकज ने कुमुद के मस्तक पर हाथ फेरा, और कोशिश करने पर भी वह अपने आँसू न रोक सके। दो आँसू कुमुद के गाल पर टपक ही पड़े।

कुमुद ने आँखें खोल कर पंकज की ओर देखा। कुमार और पिताजी ने पंकज की ओर देखा। पंकज शीघ्रता से सँभले। तीनों ने पंकज को समझने का प्रयत्न किया।

" अब मुझे जाने की आज्ञा है, कुमुद?'

कुमुद ने मुसकाते हुए हाथ जोड़ कर नमस्ते की।

पंकज बाहर आ गये। देखा कि बाहर पिताजी और माताजी खड़ी हैं। विनयपूर्वक नमस्ते करके घर से बाहर हो गये।

*　　　　*　　　　*

कुमुद के पिता बैठे हुए विकल विचारों में उलझ रहे थे कि कुमुद की माताजी ने एक पत्र ला कर दिया। तुरन्त खोल कर पढ़ा, तो उनकी भौंहों में बल पड़ गये।

"किस का पत्र है ?"

"रत्न बाबू के पिता का।" पत्र में उलझते हुए पिताजी बोले।

"क्या लिखा है ?"

"लिखा है—ख़ाक-पत्थर ! हृदयहीन कहीं के !" पिताजी ने रोष के साथ पत्र बन्द कर दिया।

"मैं भी तो सुनूँ।"

"लिखा है, कुमुद की बीमारी बढ़ती जाती है, और विवाह की तिथि आप बराबर टालते जा रहे हैं। हम इस तरह कब तक राह देखें। हमारे सामने और भी सन्देशे हैं। इस तरह हमारे हाथ से वे मौके भी निकल जायँगे। अगर आप जल्दी शादी न कर सकें, तो हम मजबूर हैं। दो-चार जगह बात चल रही है, और सभी घर आप से अच्छे हैं।—यह है। ज़ालिम कहीं के !" कुमुद के पिताजी बेतरह झल्ला उठे।

"तो उनको नर्मी से लिख दो कि अभी लड़की बीमार है, कुछ दिन और मुहलत दीजिये।" माताजी ने कहा।

"ऐसे जानवरों को क्या समझाया जाय ! हमारी पाली-पोसी लड़की हाथ से जा रही है। इनको हम पर शक है। दाल में काला है—तेरा मुँह काला', साला-हृदयहीन पत्थर।"

"कुछ ऐसा-वैसा लिख दोगे, तो लड़का हाथ से निकल जायगा। और

ऊँची तो सदा लड़केवालों की ही रहती है!" माताजी ने उन को समझाना चाहा।

पर वह और भी भड़क उठे, और लाल हो कर बोले, "भाड़ में जाय लड़का और उसके घरवाले! कभी लड़की की खबर तक न ली, और हुक्म देने चले हैं! बड़े आये चल के कहीं से। आज ही लिखता हूँ कि आप जहाँ चाहें, विवाह कर लें अपने कुंवर साहब का। हमें ज़रा भी जरूरत नहीं ऐसे लड़के की। हमारा आपका सम्बन्ध खत्म।"

कुमार भी इतने में आते दिखाई दिये। वह बैठने भी न पाये थे कि पिताजी ने आदेश दिया कि तुरन्त पंकज को बुला लाओ। कारण पूछने पर भी न बताया। कहा, "शीघ्रता करो। मैं कुमुद के कमरे में हूँ। जाओ, जल्दी बुला लाओ।"

कुमार उल्टे पैर वापस लौट पड़े। और माता-पिता कुमुद के कमरे में चले गये।

"इतना क्रोध करना ठीक नहीं!"

"बको मत! मैंने सब-कुछ तय कर लिया। अब इधर-उधर नहीं किया जा सकता!"

"क्या तय कर लिया, मैं भी तो सुनूँ?" माताजी उत्तर की प्रतीक्षा में उनके मुँह की ओर देखने लगीं।

"कुमुद का विवाह पंकज के साथ होगा—पंकज के साथ!" उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा।

सुन कर माताजी सन्न रह गईं। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कुमुद के कानों में ये शब्द जब पड़े, तो वह विस्मयजनक आनन्द, अनाशित सुख और गुलाबी लज्जा में डूब गई।

"बिरादरीवालों में हम कैसे मुँह दिखायेंगे? आप को हो क्या गया?

गया। लोग जीना मुश्किल कर देंगे!"

"जवाहर लाल नेहरू के लिये लोग जीना मुश्किल नहीं कर सके! आज वह आज़ाद भारत के प्रधान मंत्री हैं; राजगोपालाचार्य की लड़की का विवाह गाँधीजी के लड़के से हुआ। उनका लोगों ने क्या बिगाड़ लिया? आज वह भारतके गवर्नर जनरल हैं और हमने ही, साधारण बाबुओंने ही, धर्म का ठेका ले लिया है क्या? ये लोग क्या धरम-वरम कुछ नहीं समझते!" पिताजी एक ही साँस में कह गये।

उनके इस परिवर्त्तन पर कुमुद को आश्चर्य भी हुआ और कष्ट भी। वह रो कर बोली, "पिताजी, मेरे लिये आप ऐसा कोई काम न करें, जिससे आपको किसी के सामने नीची नज़र करनी पड़े! मेरा जीवन कितने दिनका, जिसके लिये आप अपने उच्च आसनसे नीचे आ रहे हैं?"

पिताजी भी कुमुद की यह विह्वलता की अवस्था देख कर धीरज खो बैठे। उनकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे।

"बेटी कुमुद, वह पिता कितना अभागा है, जो अपने हाथ से ही अपनी सन्तान की हत्या करने पर तुला हुआ हो! मैं कितना पत्थर-दिल हूँ कि अपनी आँखों के सामने ही अपनी प्यारी बेटी को तिल तिल करके मरते देख रहा हूँ!" पिताजी का जी इतना भारी हो गया कि गला रुँध गया।

कुमुद की माताजी उदास दृष्टि से कभी कुमुद की ओर, कभी पिताजी की ओर देख रही थीं।

"जी भारी न करो पिताजी!"

"मैं अपने प्रति ही कितना लज्जित हूँ! मेरी बुद्धि, न जाने, कहाँ चरने चली गई थी। मेरी ही मूर्खता से बेटी कुमुद का यह हाल हो गया। कुमुद, मुझे क्षमा करना, बेटी तेरा अभागा पिता—तेरा हत्यारा पिता ही तेरे

सब कष्टों का कारण है। मुझसे भारी अपराध हुआ ! आज मैं प्रायश्चित कर रहा हूँ ! " पिताजी अवरुद्ध कंठ से बोले ।

" पिताजी ! मेरे पिताजी ! अभागी कुमुद—आह मैं मर ही क्यों न गई ?" कह कर कुमुद पिताजी के हृदय से चिपट गई ।

दो मिनट तक यही उत्तेजनापूर्ण अवस्था रही। कुछ देर बाद किसी के आने की आहट मिली। माताजी ने देखा—डाक्टर कुमार आ रहे हैं।

" वह आ गये ! " माताजी बोलीं।

पिताजी भी बाहर की ओर देखने लगे। डाक्टर के पीछे-पीछे उदास और गम्भीर मुद्रा धारण किये पंकज भी आ रहे थे।

" आ जाईये ! "

उनके भीतर आने से पहले ही माताजी कमरे से बाहर हो गईं।

पंकज ने कमरे में प्रवेश करते हुए पिताजी को नमस्कार किया।

" बेटा, पंकज ! " पिताजी बोले और मुमुद लाज से सिमट गई।

डाक्टर और पंकज पास पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गये। पिताजी ने कहना शुरू किया, " हम तो इसका इलाज करा कर हार गये। अब तुम जानो। चाहे इलाज कराओ, चाहे न कराओ। कुमुद तुम्हारी है, और तुम कुमुद के। इस की साज-सँभार करना तुम्हारा काम है।" कह कर पिताजी उठने लगे।

" ऐसी हठीली लड़की का इलाज ? " कह कुमार मुसकाये।

" मैं जाता हूँ ! " और पिताजी उठ कर कमरे से बाहर चले गये।

उनके बाहर होते ही पंकज कुमुद की चारपाई पर बैठ गये।

" अब हमारा भी क्या काम ?" मुसकरा कर डाक्टर कुमार भी बाहर हो गये।

" कुमुद ! " पंकज ने अपनी ओर से मुँह फेरे लेटी हुई कुमुद के कन्धों पर हाथ रख कर कहा ।

कुमुद की नस-नस झनझना उठी । फिर भी वह उसी करवट पड़ी रही ।

" कुमुद, तुम्हारा पंकज..." कहते-कहते पंकजने उसको अपनी ओर कर लिया । कुमुद के पीले गालों पर लाली दौड़ गई । उसने लजीली हँसी हँस कर आँखें बन्द कर लीं, और सिर पंकज की जाँघ पर रख दिया ।

सागर-तट पर

[मार्च, १९४८]

बम्बई

साथी बिन सैलानीके लिये बावले समुद्रकी लहरें भी रेतीली चादर की सूखी सरवटें समझिये। ऊदे-ऊदे बादल घिरे थे, सब ओर चहल-पहल—सब ओर बहार फिर भी सब ओर उदासी। घूम-घूम कर तन-मन दोनों थक गये। सामने एक डबल-सीटेड् बैंच की तरफ बढ़, बैठी हुई लड़की से बोला, "अगर आप को कोई एतराज़ न हो—।" और लड़की ने अनजान उदासी मेरी ओर फेंक फिर पुस्तक पर नज़र गड़ाली।

"कौन-सी पुस्तक पढ़ रही हैं?" मैंने पूछा। उसने बिना बोले पुस्तक का कव्हर मेरी तरफ़ कर दिया।

"नाइस बुक! कितनी गहराई है इसमें! मैं तो इसे बैस्ट नौवलिस्ट मानता हूँ। अगर बैस्ट नहीं तो one of the best। क्यों, आप की क्या राय?" मैंने फिर बात-चीत आरम्भ करनी चाही।

वह अब भी कुछ न बोली। मैंने कहना शुरू किया, "तबीयत ठीक नहीं क्या? ज्यादा पढ़ने से अक्सर ऐसा होता है। सिर में दर्द?—तो थोड़ी देर पुस्तक पढ़ना बंद कर... प्रकृति की शोभा....क्या आनन्द छा रहा है।"

"अजीब आदमी हैं आप—इतनी भी सभ्यता नहीं।" उसने झल्ला कर कहा।

"इसमें असभ्यता क्या? एक शिक्षित नारी के मुँह से ऐसे शब्द—

very strange ! क्या किसी से कुशल पूछना भी असभ्यता ? किसी के दुख-दर्द में शरीक होना भी असभ्यता ? तो फिर सभ्यता क्या ? आपको बताना पड़ेगा कि सभ्यता किसे........।"

"अरे-खामख़ा योंही सिर पड़ने लगे—आपका मतलब क्या मुझ से ?" पुस्तक के बीच तर्जनी रख, उसे बन्द कर वह क्रोध से बोली।

"मतलब—क्या संसारमें मतलब ही सब कुछ है ? स्वार्थ ही मानव-सम्बन्ध की डोर है ? मतलबपरस्ती, स्वार्थ, प्रयोजन ही समाज का लक्ष है ? इसी मतलबपरस्ती ने ही अनेक महायुद्धों को जन्म दिया। इन्हीं संकुचित राष्ट्रिय स्वार्थों के कारण मानवता तबाह हो रही है—संसार में हाहाकार मचा है। लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। नारी को लाज ढकने के लिये कपड़ा नहीं। ब्लेक मार्केट का दौरदौरा है। स्वार्थी चाँदी बटोर रहे हैं। इसी मतलब और स्वार्थ ने यह सब बरबादी की। इसी मतलब ने मानवको दानव बना दिया। फिर भी मतलब ही हमारा जीवन-लक्ष ? क्या मानवता, उदारता, विश्वप्रेम संवेदना का आप की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं ?" मैं प्रभावशाली भावुक और करुण शैलीमें बोला।

वह न तो नाराज़ ही हो सकी और न मेरी बात ही काट सकी। उसे उत्तर के लिये बुद्धि दौड़ाते देख, मैंने फिर अन्तिम वाक्य दोहराया, "तो क्या सच-मुच, उदारता, मानवता, विश्वप्रेम, संवेदना आदि का आपकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं ?"

"है क्यों नहीं ?—ये गुण ही तो...फिर भी ख़ामख़ा, बैठे बिठाये..." उसने अभिभूत वाणी में कहा।

"तो फिर मानव से मानव इतनी दूर क्यों और बीच में यह अन्तर की दीवार अचल ! आपने रवीन्द्र की "सभ्यता-संकट" पढ़ी है न ?"

" हाँ कहीं-कहीं से देखी है !—बहुत अच्छा लिखते हैं।"

" दार्शनिक और कलाकार घुल-मिल गये हैं—विश्व के लिये महान् सन्देश—क्या उनके विचार पुस्तक में ही रह जायँगे ? क्या हम उनके सपनों को चूर-चूर कर देंगे ?—बाइ दि वे, आपका शुभनाम ?"

" मिस माला।"

" बड़ा मीठा नाम है।"

वह जरा मुसकाई।

मैं फिर बोला, " मिस माला, क्या यह अच्छा नहीं, मानवता सब बन्धनों से मुक्त हो जाय। मानव का सम्बन्ध मानव सेइसलिए हो कि वह मानव है। आवश्यकता क्या है—इस धर्म की, मत-पन्थ की ? इस मजहब और राजनीतिक दलबन्दी की ?"

" यह भी मैं मानती हूँ, लेकिन फिर भी कभी-कभी थ्योरी और प्रैक्टीकल लाइफ......।" वह बात भी पूरी न कर पाई। एक भिखरिन आकर गिड़गिड़ाने लगी। मैं बिगड़ कर बोला, " कम्बख्त एक मिनट भी तो बातें...आ चढ़ी सिर पर। जा माई, माफ़ कर। इनको तो कानून...।"

" लेकिन इनका भी क्या दोष ? समाज क्या इस मामले में कम अपराधी है ?" उसने उसके प्रति संवेदना प्रकट की।

भिखारिन तो शह पा गई, वह भला क्यों टलने लगी। उसने और भी उत्साह से आशीर्वाद देना शुरू किया, " धर...मै...माइ-बाप—यह जोड़ी जुग-जुग जिये।"

" क्या बकती है, बेवकूफ़—चुप। बदतमीज़। इन लोगों को बोलना तक नहीं आता।" उसे डाट, वह मेरी तरफ़ देखने लगी। मैं कान उधर ही

दिये, समुद्री उफ़ान देख रहा था। मुँह फेर भिखारिन की तरफ़ देखा, वह फिर अपने पेटेण्ट ढंग में बोली, "धर...मै...माई-बाप—जोड़ी जुग-जुग... परमात्मा जोड़ी बनाये रखे।"

"बेवकूफ, जायगी नहीं। क्या बकती है, नालायक़, इन को बोलने की भी तमीज नहीं। इसे भगाइये न।" वह परेशानसी होकर बोली।

"लेकिन इन का भी इस में क्या दोष?" मैंने मुसका कर कहा।

"आप भी अजीब आदमी हैं।" वह गर्म होकर बोली।

"इस में बुरा क्या। यही तो कहती है, हम दोनों बहुत दिन तक जीवित रहें। जवानी में हम में से कोई भी मर जाय, तो क्या यह अच्छा हो? वेदों में भी सौ-वर्ष जीवन की प्रार्थना है। गाँधीजी स्वयं १२५ वर्ष तक जीवित रहना चाहते थे। हम ही क्यों जल्दी मर जायँ - जीवित रह मानव-हित क्यों न करें? और हम ही क्यों, ईश्वर करे, सभी लोग बहुत दिन तक जीवित रहें। इसमें क्रोध किसलिये?"

"क्रोध न आवे तो और क्या...?"

"आज जीवन में पहली बार किसी को देखा है, जो शुभ कामना पर भी नाराज़ हो। मैंने कुशल पूछी, तो गर्म होने लगीं। इसने दीर्घ जीवन की कामना की तो इस पर बिगड़ रही हैं। नारी के लिये क्रोध शोभाकी वस्तु नहीं। ऐसी लड़की मैंने तो आज तक नहीं देखी।"

"मैंने भी आप जैसा आदमी आज तक नहीं देखा।" कह कर उसे हँसी आ गई।

भिखारिन अब भी जमी थी। फिर गिड़गिड़ाने लगी।

"नहीं जायगी बेवकूफ, चल भाग।" दबी हँसी से उसने डाटा।

बेंच से दो-तीन गज़ पर एक बुढ़िया बहुत देर से यह सब-कुछ देख

रही थी। वह प्यार-भरे स्वरमें बोली, " देदो ने बेटी, कुछ। देवताकी रेता में तो लोग अकेले तक आकर कुछ न कुछ दे जाते हैं तुम तो...परमात्मा की दया से...।"

" अरे कुछ देकर इसे टालो भी। " मैंने दबी मुसकान से उसे संकेत किया।

" दीजिये न आप—आये बड़े दानी। एक मिनट बैठना भी —।" कह, वह झल्लाते हुए, उठकर चल दी।

मैं भिखारिन की तरफ एक चवन्नी फेंककर कहते हुए उसके पीछे चला, "आप, अरे, आपकी पुस्तक....ये लोग न किसी की...पोज़ीशन, न किसी का... ये लोग और...मूर्ख......अरे, यह पुस्तक तो......।"

और बादलों ने पड़पड़-पड़पड़ पानी उलट दिया। वह भागी, मैं भी भागा। दोनों सड़क पार एक दूकानके बरामदे में आ गये। १०-१५ आदमी वहाँ हमसे भी पहले से एकत्र थे।

पुस्तक उसके हाथ में देते हुए मैंने कहा, "उसकी बातों पर ध्यान न दीजिये—नाइस बुक !"

उसने उदासीनता से पुस्तक लेली और निर्भाव नयनों से वर्षा की बूँदों को सड़क के पानी में सूराख करते देखती रही।

"और आपने द्रास्तावस्की की 'क्राइम एण्ड पनिशमेण्ट' पढ़ी है न ?"

"नहीं।" वही उदासीनता।

" बड़ी शानदार चीज़ है। उसे जरूर पढ़िये। कल लायब्रेरी से ले आऊँ ? क्या गम्भीर गहन मनोविज्ञान का प्रकाशन करता है। खैर, उसे क्या पता कि हम और आप......और बुढ़िया ने तो कमाल ही कर दिया—ईडिअट ! आप उनकी बातों पर जरा भी ध्यान न दें—यह तो दुनिया है।"

वह ज्यों की त्यों चुप—भीड़ में से कोई बोला, "और क्या—दुनिया सराय फ़ानी।"

और सहसा एक बाबू ने अखबार पढ़ते-पढ़ते हँस दिया। सब लोग उसकी तरफ खिंचे।

"लीजिये, यह है दुनिया। एक ग्रेजुएट पत्नी ने अपने पति को इसलिये तलाक़ दे दिया कि वह मूँछें रखता था—वाह रे शिक्षा।" कह कर, वह फिर हँसा।

"उस की रूखी हँसी ने भी कितने ही लोगों की वाणियों में गुदगुदी पैदा कर दी।

"हमने तो पढ़े-लिखे जोड़ों में सदा झगड़ा ही देखा।"

"पता नहीं, इस पढ़ाई में क्या विष है।"

"और विषेश तौर से लड़कियाँ तो...... ।"

"पढी–लिखी लड़कियाँ तो जान को आफ़त हैं।"

"और इस फैशन का भी...।"

"मिया कमाये पाँच, बीबी उड़ाये पचास।"

इसी प्रकार कितनी ही वाणियाँ कैंची की तरह चल गईं। मुझसे न रहा गया। उसने भी कुछ उदासीन और लाल कनखियों से मेरी ओर देखा। तब तो उत्तर देना मेरा कर्तव्य हो गया। मध्ययुग होता तो तलवारें चल जातीं। महाभारत हो जाता। नारी-जातका अपमान। पर मैं इतना ही बोला, "यह मैं नहीं मानता कि पढ़े-लिखे सभी दम्पति परेशानी या अशांति में...।"

"लेकिन अधिकतर तो ...और विशेपतः शिक्षित लड़कियों में अधिकार की प्यास इतनी बढ़ जाती है ......।" एक व्यक्ति बोला।

उसने उस व्यक्ति की ओर देखा और इसके बाद फिर उड़ती-सी दृष्टि

मेरी ओर भी फेंकी। मैं और भी उत्साह से अपना पक्ष समर्थन करने लगा, "पढ़-लिख कर, मैं तो समझता हूँ, स्वाभाविक गुणों का विकास होता है। कर्तव्य-पालन की भावना आती है। अधिकतर शिक्षित जोड़ों में आप आदर्श त्याग, मनोरम प्रेम, स्निग्ध संवेदना, एक-दूसरे पर मर-मिटने की कामना, सम्पूर्ण आत्मसमर्पण आदि-आदि पायँगे।" मेरी बढ़िया भाषा, लचकदार बातें सुनकर सब लोग मेरी तरफ देखने लगे। फिर भी एक आदमी बोल उठा, "हमने तो हर घर में झगड़ा ही पाया।"

"तो आपकी समझ में पढी-लिखी लड़की झगड़ालू...हर शिक्षित दम्पति परेशान......हर घर में...?" मैंने हल्की-सी मुसकान से पूछा।

"लेकिन, सब आपके समान सौभाग्यशाली भी नहीं—ये तो आप दोनों.......।" कह उसने मेरी और उसकी तरफ संकेत किया।

"किस तरह की बातें करते हैं? इतनी भी तमीज़ नहीं?" उसे झिड़कते हुए वह बोली।

"मैंने इस में बुरी बात क्या कही, बहनजी?"

"लेकिन बात-चीत में इस तरह पर्सनल अटैक तो नहीं करना चाहिये।" मैं गम्भीरता से बोला।

"मेरा कोई बुरा भाव नहीं था। अगर ऐसा समझा गया तो मुझे खेद है। मैं तो परमात्मा से चाहता हूँ, आप दोनों सदा सुख-शान्ति से रहें।"

"रबिश—असभ्य!"—और वह बुरी तरह तिलमिलाती-सी वहाँ से भागी। मुझे भी उसके साथ जाना पड़ा—विवश था। न जाता, तो न जाने लोग क्या समझते।

क्या आप जानते है ?

कि स्वस्थ और सबल शरीर के लिये कैसा भोजन चाहिये ?

क्या आपने कभी विचार किया है ?

कि मन की आकुल प्यास और हृदय की भूख बुझाने के लिये कैसा साहित्य पढ़ना चाहिये ?

क्या आप नहीं देख रहे है ?

कि हमारी स्वाधीन चेतना मानो सो–सी गई है।

सबल मस्तिष्क तन्द्रालस में ऊंघ रहा है ।
हमारी संस्कृति मानो शाम की ढलती–सी छाया है।
हमारी कला–रूचि मानो विलास की अंगड़ाई है और
हमारा संकल्प मानो संदेह की आँखमिचौनी है ।

यह सब क्यों ?

क्यों कि हमारा स्वभाव स्वस्थ और सबल साहित्य पढ़ने का नहीं है।

क्या आप नहीं देख रहे है ?

कि हमारे सामाजिक जीवन–भवन की नींव खोखली हो चुकी है।

उसकी दीमक, लोनी और घुन लगी दीवारें लड़खड़ा कर गिर रही हैं।
उसकी छत में सैकड़ों दराडें पड़ गई हैं।

मानव–सामाजिक जीवन का प्राण–आज निराशा के आँसुओं की नदो में बहा जा रहा है।

चारों ओर अंधेरा, बेबीसी और आहें–कराहें हैं।

समाज की निराशा और धुंधली परिस्थितियों ने अश्रु–गीले, पराजित जर जर और निराश–निर्बल साहित्य को जन्म दिया है।

इस में सन्देह नहीं

कि साहित्य समाज का चित्र है—मानव जीवन का दर्शन है। आंसू और उच्छवास भी स्वाभाविक देन हैं किन्तु केवल आंसू ढहलती हुई दीवारों को नहीं रोक सकते। इस के सिवा निष्प्राण समाज में प्राण संचार कर उसे जीवन-संघर्ष की सुदृढ़ चट्टान पर खड़ा करना भी **साहित्य** का सबसे बड़ा धर्म्म है। मानव को सच्चा मानव बनाना, जीवन को वास्तविक जीवन देना भी **साहित्य** की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। आंसुओं की बाढ़ में डूबते-उतराते मानव जीवन के लिये **साहित्य** ही सबल नींव है। सन्देह की सघन तिमिर-घाटी को चीर कर प्रकाश देने वाला ज्योतिपिण्ड **साहित्य** ही तो है। पराजित प्राणों में विजय का उल्लास भर जीवन-क्षेत्र में भेजने वाला प्रेरक चारण **साहित्य** ही तो है। पर

वास्तविक और स्वस्थ साहित्य !!

आज ऐसे ही **साहित्य** की आवश्यकता है, जो हमारे समाज के लड़खड़ाते ढांचे को सबल बना सके। हमारे संकल्पों को प्राणवान और सक्रिय बना सके। हमें स्वस्थ मन, निर्मल मस्तिष्क और समय तथा दूरी को भेदनेवाली तीव्र और तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म दृष्टि दे सके। और

ऐसे ही साहित्य की

पावन कामना लेकर हमने नवीन प्रकाश, नवीन प्रेरणा और नवीन जीवन देने वाली रचनायें, अंग्रेज़ी के साथ ही **राष्ट्रभाषा हिन्दी** में भी प्रकाशित करना आरंभ कर दिया है। हमारे द्वारा प्रकाशित, आगे उल्लिखित, पुस्तकों और उनके रचयिताओं का संक्षिप्त परिचय ही इसका सुप्रत्यक्ष प्रमाण है।

आप सहयोग, परामर्श तथा आदेश देकर हमें अनुगृहीत कीजिये और स्वयम भी लाभ उठाईये, पुण्य कमाईये।

'धननूर' बिल्डिंग, तीसरा माला,
सर फीरोजशाह मेहता रोड,
फोर्ट-बम्बई १,

—**नालन्दा-प्रकाशन,**

अन्त:राष्ट्रीय राजनीति के सुप्रसिद्ध विद्वान

श्री रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए०; एल-एल० बी०

की ३ महत्वपूर्ण रचयायें—

१. ग्राम-स्वराज्य

अर्थात्

भारतीय ग्रामों में पंचायती राज्य

भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ग्रामों में पंचायती राज के विकास के लियें हमें क्या-क्या करना चाहिये—इसका पूर्ण और प्रामाणिक विवेचन विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में बडे सरल और सुबोध शब्दों में किया है।

यह पुस्तक प्रत्येक ग्राम-वासी के लिये केवल पठनीय ही नहीं वरन् संग्रह करने योग्य है। **मूल्य ३॥)**

आज ही अपनी प्रति के लिये लिखिये।

२. दलित समाज की स्वाधीनता

इस नवीन मौलिक पुस्तक में विद्वान लेखक ने विश्व-वंद्य **महात्मा गांधी जी** के सर्व-प्रिय शोषित, पीडि़त, दलित, समाज की, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से बहुत ही मार्मिक और सुन्दर विवेचन किया है। आपको **'भारत का दलित समाज'** पुस्तक पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग द्वारा श्री राधामोहन गोकुल जी पुरस्कार हरिद्वार-सम्मेलन (१९४३) में मिल चुका है।

यह पुस्तक प्रत्येक सामाजिक कार्यकर्त्ता, हरिजन-सेवक तथा दलित जातियों के लिये गीता की भांति संग्रह करने योग्य है।

कृपया अपनी प्रति शीघ्र मंगालें।

अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा-करनी पडेगी। **(छंप रही है)**

३. समाजवाद : सिद्धान्त और प्रयोग

विद्वान लेखक ने इस ग्रन्थ में समाजवाद के सिद्धान्तों का विशद विवेचन वडे प्रामाणिक ढंग से किया है और इसके दूसरे खण्ड में सोवियट–व्यवस्था, भारत में समाजवाद–आन्दोलन, गांधीवाद और उसका भविष्य तथा कांग्रेस और समाजवाद पर विचारपूर्ण विवेचन किया है, इससे एक सामान्य पाठक भी समाजवाद के आदर्शों तथा व्यवस्था को भली भांति समझ कर अपने देश और समाज के नव–निर्माण में सक्रिय योग दे सकेगा ।

ऐसी उपयोगी और सुन्दर रचना की इस समय देश की जनता को वड़ी अवश्यकता थी । अधिकारी लेखक ने इस कमी को पूरा कर साहित्य और समाज की बड़ी सेवा की है ।

कृपया अपनी प्रति शीघ्र मंगावें ।   (छप रही है)

दुग्ध–विज्ञान

दूध मृत्युलोक का अमृत है, पर इस के विषय में आप कितना जानते हैं ?

यदि दूध के विषय में आप सब कुछ जानना चाहते हों तो—

श्री गंगा प्रसाद जी गौड़ ‘ नाहर ’ तत्वचिकित्सक लिखित

दुग्ध–विज्ञान

पुस्तक पढ़िये ।

इस में आपको ऐसी जानकारी प्राप्त होगी जिसको आपने न किसी से सुना होगा और न किसी पुस्तक में पढ़ा ही होगा । जो कुछ लिखा गया है सब स्वानुभवों पर आधारित है और लेखक के २५ वर्षों के अन्वेषणों के फलस्वरूप है ।

पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी और वैज्ञानिक है ।

अवश्य ही पढ़िये   **(छप रही है)**

मास्टर श्री ज़हूर बख्शश जी 'हिन्दी-कोविद'

के लेखन चातुर्य, सुलझी और मंजी हुई भाषा, प्रभावोत्पादक शैली, बालमनोविज्ञान के अनुभव और हृदय-स्पर्श करनेहारी मर्मभेदी लेखनी का परिचय सामयिक साहित्य पढ़नेवालों को भली भांति है। आप पिछले पैंतीस वर्ष से हिन्दी की सेवा करते आ रहे हैं।

हम आप का कहानी-संग्रह और बालसाहित्य तथा पाठ्य-क्रम की निम्न ४ अनूठी रचनायें शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं।

(प्रतीक्षा कीजिये)

श ब न म

हिन्दी के वर्तमान कालीन मुस्लिम सेवकों में लेखक का स्थान सर्व-प्रथम है। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी ही चुनी हुई ग्यारह कहानियों का सङ्कलन किया गया है। ये कहानियाँ जहाँ एक ओर मानव-प्रकृति का सुरुचि-पूर्ण परिचय देती हैं, वहाँ दूसरी ओर कलात्मक पृष्ठ-भूमि पर भी अवलम्बित हैं।

कहानियों की भाषा बड़ी ही सुन्दर तथा टकसाली है और उसमें मुहाविरों की शोभा तो देखते ही बनती है। इतना ही नहीं, कहानियां रोचक भी विशेष हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जहाँ आप एक वार पुस्तक हाथ में लेंगे, समाप्त किए बिना कदापि न छोड़ सकेंगे। **(छप रही है)**

गुलामी पाप है

इसमें एक पवित्र उद्देश्य को सामने रखते हुए, एक नये ही ढङ्ग से कुछ कहानियाँ लिखी गई हैं।

हमारे देशमें हिन्दू मुस्लिम-कलह का एक कारण यह भी है कि दोनों ने आजतक एक दूसरे के गुणों को परखने की चेष्टा नहीं की है। यह पुस्तक लिखते समय लेखक महोदय का यही आशय रहा है कि हिन्दू भाई अतीत काल के मुस्लिम महापुरुषों से कुछ परिचित हो जाँय और मुस्लिम भाई अपने पूर्वजों से कुछ प्राप्त कर सकें। बस, इसी दृष्टि-कोण से उन्होंने यह एक ऐतिहासिक गुलदस्ता प्रस्तुत कर दिया है, जिसके प्रत्येक फूल में कुछ-न-कुछ सौन्दर्य, सुगन्ध और आकर्षण है।

(छप रही है)

मात्रा–बोध

आपने कहानियों की यह पुस्तक बहुत ही सरल शब्दों के योग से केवल अक्षर–ज्ञान रखनेवाले छोटे-छोटे बच्चों के लिये लिखी है। इसकी सभी कहानियाँ मात्राओं पर अवलम्बित हैं। फल यह होता है कि जहाँ प्रत्येक कहानी का आकर्षण बच्चों के मन में पढ़ने की गुदगुदी उत्पन्न करता है, वहाँ उनको क्रमशः मात्राओं का सुपुष्ट बोध भी कराता जाता है। सचमुच, बच्चों को मात्राओं का रुचिकारक ज्ञान देने के लिए यह एक अपूर्व पुस्तक है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी में इस विषय की ऐसी पुस्तक अबतक प्रकाशित नहीं हुई, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

प्रत्येक कहानी के साथ आवश्यक चित्र देने से पुस्तक की उपादेयता में और भी वृद्धि हो गई है। **(छप रही है)**

कहानी–बोध

इस पुस्तक में पहली कक्षा-योग्य बालकों के लिये छोटी–छोटी अत्यन्त सरल, रोचक और शिक्षाप्रद पच्चीस कहानियाँ एक नवीन ढङ्ग से लिखी गई हैं।

यदि बालक कहानी सीख ले और शब्द-भाण्डार की दृष्टि से उसका ज्ञान अपूर्ण रहे, तो यह शिक्षण–शास्त्र की दृष्टि से एक बड़ी त्रुटि है। इसी त्रुटि को दूर करने के लिये लेखक महोदय ने इन कहानियों की रचना नित्य बोल-चाल में आनेवाले **केवल चार सौ सरल शब्दों** के योग से की है, घोर परिश्रम के साथ यथा-स्थान प्रत्येक शब्द की कम-से-कम पाँच बार पुनरावृत्ति की है और पुस्तकान्त में व्यवहृत शब्दों की सूची भी दे दी है। परिणामतः इस पुस्तक के पाठ से जहाँ बालक नई-नई कहानियां सीखते हैं, वहाँ उनका भाषा-विषयक ज्ञान भी पुष्ट होता है।

प्रत्येक कहानी के साथ अवश्यक चित्र देने से पुस्तक और भी आकर्षक और उपादेय बन गई है।

पढ़ने–लिखने की अभिलाषा रखनेवाले वयस्क जन भी इन दोनों पुस्तकों से भरपूर लाभ उठा सकते हैं। **(छप रही है)**

बाल-स्वास्थ्य-बोध

स्वतंत्र देश में स्वस्थ और स्वच्छ वालक ऐसे ही प्रतीत होते हैं, जैसे-प्रकृति के उद्यान में खिले हुए आकर्षक और सुरभित पुष्प। अब हमारा देश भी स्वतंत्र हो चुका है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि हमारे वालक भी स्वस्थ एवं स्वच्छ रहना सीखें और अपने देश को हरी-भरी वाटिका के समान मोहक बना दें। परंतु हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी में अबतक ऐसी पुस्तक का अभाव था, जो वालकों को शरीर और वस्त्र-सम्बन्धी यथेष्ट शिक्षा दे सकती।

इसी अभाव की पूर्ति करने के लिये **कुमारी मुबारकजहाँ** ने इस पुस्तक की रचना की है। यह पुस्तक पहली कक्षा से लेकर चौथी कक्षा तक के वालकों के लिये चार भागों में विभक्त है। इसके प्रत्येक भाग में प्रत्येक कक्षा के वालकों को योग्यतानुसार शारीरिक और वस्त्र विषयक स्वच्छता रखने के लिये बड़ी सरल तथा सुन्दर भाषा में शिक्षा का समावेश किया गया है। एतदर्थ कहानियों, संवादों और कविताओं की अवतारणा इतने मनोरंजक ढंग से की गई है कि बालक पुस्तक पाते ही पढ़ने के लिये व्यग्र हो उठेंगे।

सचमुच यह बड़ी उपयोगी और पाठशालाओं में पढ़ाई जाने योग्य पुस्तक है। अवश्य ख़रीदिए, वालकों के हाथ में दीजिए और उनका जीवन स्वस्थ, सुखी तथा दीर्घ-जीवी बनाइए।

प्रथम भाग पहली कक्षा के लिये। द्वितीय भाग दूसरी कक्षा के लिये। तृतीय भाग तीसरी कक्षा के लिये और चतुर्थ भाग चौथी कक्षा के लिये।

पुस्तक आवश्यक चित्रों से परिपूर्ण है और बालकों तथा वालिकाओं के लिये समान रूप से उपयोगी है। **(छप रही है)**

हमारा समाज

लेखक

इस विषय के सुप्रसिद्ध मनीषी और सिद्धहस्त तथा अनुभवी विद्वान

श्री. सन्तरामजी बी. ए., सम्पादक "**क्रान्ति**"

भूमिका-लेखक

माननीय डाक्टर **श्री. भीमरावजी अम्बेडकर** एम. ए., पी-एच. डी.
क़ानून मन्त्री भारत गवर्नमेण्ट

पुस्तक, लेखक के २५ वर्षों के अध्ययन, मनन और अनुभव का निचोड़ है ।

इस में बताया गया है कि जात-पाँत कैसे बनी। आरम्भ में इसका क्या रूप था, इससे क्या-क्या हानियां हुईं, बुद्ध आदि महात्माओं ने इसे दूर करने का कैसा यत्न किया, स्मृतियों और शास्त्रों की क्या आज्ञा है, जिन हिन्दुओं का ९ वीं शताब्दी में भी काबुल तक में राज्य था उनको आज पंजाब से भी क्यों निकलना पड़ा, सच्चा सनातन धर्म क्या है? इत्यादि इत्यादि ।

इस में बहुत सी ऐतिहासिक घटनायें और वैज्ञानिक खोजों को संग्रहीत किया गया है। इसे एक बार ध्यानपूर्वक पढ़लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति **जाति-भेद** से अवश्य ही घृणा करने लगेगा ।

इस विनाशकारी भेद-भाव को समूल नष्ट करने की जितनी आवश्यकता इस समय है—उतनी पहिले कभी नहीं थी। **पाकिस्तान** और **हिंदुस्थान** का बँटवारा अवश्य ही हो गया है—पर इससे ख़तरा दूर नहीं हुआ। इस समय जो मुसलमान भारत में रह गये हैं—यदि उनको प्रेमपूर्वक अपने समाज में पचाने का यत्न न हुआ तो कालान्तर में उनका '**फ़िफ्थ काल-मिस्ट**' या **देशद्रोही** बनना अवश्यम्भावी है। तब बाहर से पाकिस्तान और भीतर से यह लोग भारत का नाकों दम करने लगेंगे। परन्तु जो हिन्दू दूसरे हिन्दू को भी अपने में नहीं पचा सकता, वह मुसलमान को कैसे

पचा सकेगा? इसलिये मुसलमानों और हिन्दूओं को मिलकर एक संगठित राष्ट्र बनाने के लिये जाति-भेद को शीघ्र से शीघ्र मिटा देना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी है। जाति-भेद के रहते '**अच्छूतोद्धार**' और '**शुद्धि**' कभी भी सफल नहीं हो सकती हैं।

एतदर्थ आप से साग्रह निवेदन है कि आप इस पुस्तक के प्रचार में हमें पूरी-पूरी सहायता प्रदान करें। आप जहाँ स्वयम् एक प्रति खरीदें वहां अपने मित्रों को भी इसे ख़रीद लेने की प्रेरणा करें।

यदि कई मित्र मिलकर एक ही पार्सल से इकट्ठी ही कापियाँ मंगायेंगे तो डाक-व्यय आदि में बड़ी किफ़ायत होगी।

पुस्तक में कई आकर्षक और प्रभावपूर्ण चित्र भी हैं।

(छप रही है)

LINGUA INDIANA

A classic on the burning topic of the day

by

Swaminath Sharma, B.A., T.D., Visharad.

A most comprehensive survey of the language-question from all angles against appropriate historical back ground as has not been attempted before.

A very rational and judicious approach of this vexatious problem, supported by faithful details and convincing arguments. Re. 1/8.

AVAILABLE AT

NALANDA PUBLICATIONS,

3rd Floor, Dhan Nur, Sir Phirozeshah Mehta Road, Bombay 1.

इनके अतिरिक्त—

—साहित्याचार्य, प्रिन्सिपल **श्री पंडित सीतारामजी चतुर्वेदी** एम० ए०; एल टी०; एल-एल० बी०;

—प्रोफेसर **श्री उमा कुमारी जी मांडवल** एम० ए०; एल-टी०;

—प्रोफेसर **श्री हेमन्त कुमारी जी** एम० ए०; एल-टी; साहित्य रत्न;

—प्रिन्सिपल **श्री कृष्णदेव प्रसाद जी गौड़** एम०ए०; एल-टी०; 'बेढब' बनारसी;

—प्रोफेसर डाक्टर **श्री राम प्रताप बहादुर जी** एम० ए०; डी० फ़िल०;

—प्रोफेसर **श्री नित्यानन्द जी** आयुर्वेदाचार्य;

—प्रोफेसर **श्री पंडित भगवद्दत्त जी** बी० ए०; वैदिक रिसर्च स्कालर;

—प्रोफेसर **श्री पंडित जगदीश चन्द्र जी** शास्त्री, एम्० ए०;

—प्रोफेसर डाक्टर **श्री जगदीशचंद्र जी** एम्० ए०; पी-एच०डी०;

—प्रोफेसर **श्री प्रभाकर माचवे जी** एम०ए०; साहित्यरत्न;

—श्री रांगेय राघवजी;

—श्री पीर मुहम्मद जी 'मूनिस' आदि आदि

कई सुविख्यात और अधिकारी विद्वान तथा विदुषी देवियां हमारे लिए महत्वपूर्ण रचनायें तैयार कर रही हैं जिन्हें हम यथासंभव शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे।

प्रकाशन से पूर्व ग्राहक श्रेणी में नाम लिखानेवाले महानुभावों को हम भरपूर सुविधायें-रियायतें-देने की योजना पर भी विचार कर रहे हैं।

आप भी शीघ्र ही, ग्राहकों में नाम लिखालें। इस से हमें और आप-दोनों को ही सुविधा होगी तथा लाभ होगा।

नालन्दा-प्रकाशन, पोस्ट बॉक्स १३५३, मुम्बई नं० १

नालन्दा-प्रकाशन—

" बम्बई की नालन्दा–प्रकाशन संस्था एक अत्यन्त ही उपयोगी और नामांकित संस्था है। गत दो तीन वर्षों में ही इस संस्थाने अंग्रेज़ी भाषा में अत्यन्त महत्वपूर्ण, गम्भीर और उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित कर के देश और विदेश में अच्छी ख्याति प्राप्त करली है।

यह जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब इस संस्थाने राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी प्रकाशन–कार्य आरम्भ कर दिया है। और इस कार्य को आरम्भ करने, संचालन करने तथा अग्रसर करने का श्रेय हिन्दी-साहित्य के तथा मध्य-भारत के चिरपरिचित **श्री. द्वारिका प्रसाद सेवक** को है। सेवकजी ने इन्दौर में **सरस्वती–सदन** द्वारा उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित किया था। आप कई प्रसिद्ध–पत्रों के सम्पादक तथा संचालक भी रह चुके हैं। इस क्षेत्रमें आपका अनुभव भी बहुत पुराना है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आपके सहयोग से नालन्दा–प्रकाशन द्वारा देश, समाज तथा राष्ट्र–भाषा का महत्–उपकार होगा।

हमें ज्ञात हुआ है कि विभिन्न-विषयों पर १४–१५ अत्यंत ही उपयोगी, महत्वपूर्ण, मौलिक और उच्च-कोटि की सामयिक हिन्दी पुस्तकें इस संस्था–द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होंगी।"

" **वीणा** " मई '४८

नालन्दा-प्रकाशन, बम्बई

'विक्रम' के साहित्य प्रेमी पाठकों को बम्बई की प्रसिद्ध संस्था 'नालन्दा-प्रकाशन' का परिचय देते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

कुछ गुजराती उत्साही मित्रोंके सहयोगसे यह संस्था गत २, ३ वर्षोंसे यहां प्रकाशन कार्य कर रही है। अंग्रेज़ी में बहुत महत्वपूर्ण और बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित करके इसने अच्छी ख्याति भी प्राप्त करली है।

अब विशेष हर्ष की बात यह है कि प्रसिद्ध और पुराने साहित्यकार "नव जीवन" (मासिक) "भारतीय-आदर्श" और "वैदिक संदेश" (साप्ताहिक) आदि पत्रोंके सम्पादक तथा सरस्वती-सदन (इन्दौर) के संचालक वयोवृद्ध श्री द्वारकाप्रसाद जी सेवक के सहयोग से इस संस्थाने राष्ट्र–भाषा हिन्दी की सेवा करना भी आरम्भ कर दिया है। श्री सेवक जी पुराने अनुभवी होनेके साथ ही बडे उत्साही कार्यकर्ता, परिश्रमी और कर्तव्य परायण समाज सुधारक भी हैं। आपका परिचय भी बड़ा विस्तृत है। हमें आशा है कि आपके सहयोगसे इस संस्था द्वारा निकट भविष्यमें ही राष्ट्र भाषा की बहुत कुछ सेवा हो सकेगी। हमें मालूम हुआ है कि 'हमारा समाज' जैसी १४, १५ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामाजिक और मौलिक रचनायें इन दिनों छप रही हैं और कई प्रसिद्ध विद्वान इस संस्थाके लिए उपयोगी साहित्य लिख भी रहे हैं जिसके प्रकाशित करनेकी विशाल, स्थिर तथा गम्भीर योजना इनके सन्मुख है।

परिश्रमी और विद्वान लेखक महानुभाओं को इस संस्थासे संबन्ध करना चाहिए। संस्था अपने लेखकोंको और पुस्तक विक्रेताओं को भी भरपूर सुविधायें देने को समुद्यत है।

एक बात हमें लिखनी आवश्यक है। और वह यह है कि इस संस्था की पुस्तकोंका मूल्य अधिक होता है। हम जानते हैं कि सुन्दर टाइप, अच्छी छपाई, अच्छे कागज, पक्की जिल्द आदिके साथ मूल्य कम रखना अशक्य–सा

है। फिर बम्बईमें इन दिनों छपाई और कागज की भीषण मँहगाई तथा यहां, विशेषकर हिन्दीमें कम्पोजिंग की कठिनइयां, इतनी अधिक हैं कि बाहर वाले उनका अनुमान भी नहीं कर सकते हैं। यह सब कुछ वाजिब होते हुए भी हम संचालकगण से आग्रह करेंगे कि वह अपनी पुस्तकों का मूल्य कमसे कम रखनेका उद्योग करें। विशेष रूपसे हिन्दी भाषी जनता अधिक मूल्यवान पुस्तकें खरीदनेमें बहुत आगा-पीछा करती है, उसे ऐसा करना पड़ता है। कम मूल्य रखनेसे बिक्री में वृद्धि होगी और उपकार तथा प्रचार भी विशेष होगा। हमारी दृष्टि में यदि कागज और जिल्दें हल्की रखी जायं तो भी हानि नहीं, इससे भी लागत में पर्याप्त किफायत हो सकती है। टाइप और छपाई अवश्य ही सुन्दर होनी चाहिए।

× × × × × ×
× × × × × × ×
× × × × × ×

इस संस्था द्वारा 'भारत की भाषा' 'Linga Indiana,' 'शाह आलम की आँखें' 'Teaching of Hindi' और 'ग्राम-स्वराज्य' आदि अभी हाल में ही प्रकाशित पुस्तकें तो इतनी उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं कि इन को सहस्रों की संख्या में खरीद कर प्रान्तीय गवर्नमेण्टों, म्युनिसिपालिटियों तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा ग्रामों में प्रचार करना चाहिए।

इन पुस्तकों के लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाईके अधिकारी हैं।

हम इस संस्था, नालन्दा-प्रकाशन की पूर्ण सफलताके इच्छुक हैं।

"विक्रम"

१८ मई '४८

विशेष द्रष्टव्य—

इस सूचीपत्र में जिन पुस्तकों के प्रेस में होने की सूचना है उन में से कुछ अगस्त '४८ में छप जायंगी, कुछ सितम्बर में और शेष अक्तूबर '४८ में प्रकाशित हो जायँगी।

जो महानुभाव मात्र १) रु० का मनीआर्डर भेजकर अ से ग्राहकों में नाम लिखा लेंगे उनको हम कमीशन की छूट देंगे और डाक-व्यय तथा पेकिंग आदि में भी किफ़ायत करेंगे। किन्तु शर्त यह ही है कि १) रु० आप के पूरे नाम और पते सहित हमारे पास शीघ्र ही आजाना चाहिये।

आवश्यक नहीं है कि आप सभी पुस्तकें मंगावें, जो-जो आप पसंद करें और जो आपको रुचिकर हों, उनके ही ग्राहकों में नाम लिखाइये।

पुस्तक विक्रेताओं को भी, जो अधिक संख्या में आर्डर देंगे हम पर्याप्त सुविधायें देने को तय्यार हैं।

आर्डर भेजिये। व्यवहार सब नक़द ही होगा। बिल्टी, बेंक अथवा वी० पी० द्वारा भेजी जा सकती है। किन्तु चौथाई मूल्य पेशगी आना आवश्यक है।

व्यवस्थापक

नालन्दा-प्रकाशन

२० जुलाई '४८

तीसरा माला, धननूर बिल्डिंग
सर फ़ीरोज़शाह मेहता रोड,
फ़ोर्ट-बम्बई, नं० १